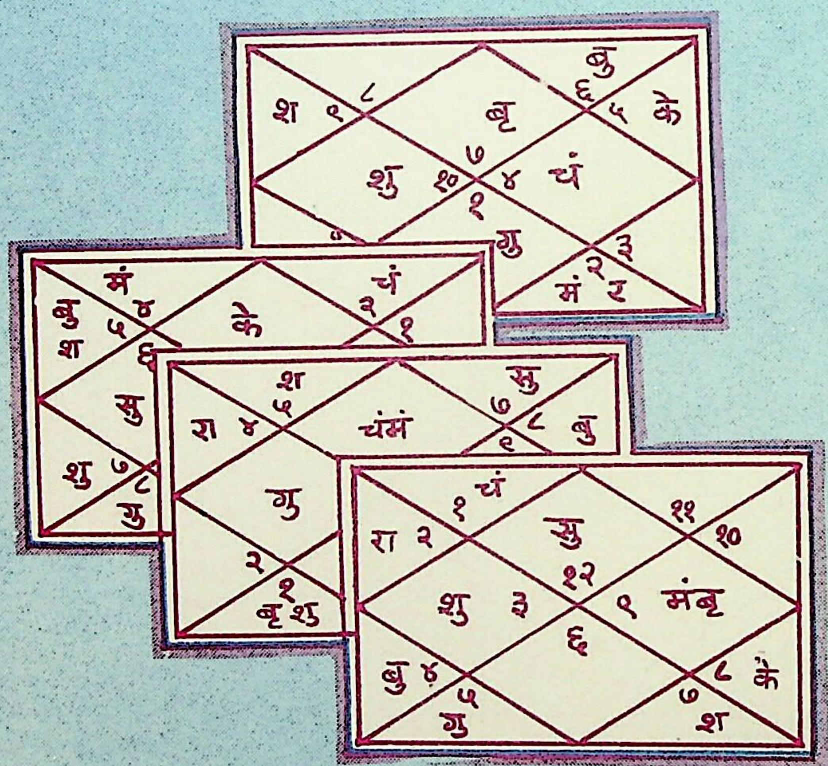
जैमिनीयसूत्राणि



॥ श्रीः ॥

जैमिनीयसूत्राणि ।

ढाढोलिग्रामनिवासि-श्रीपाठकमंगलसेना-
त्मजकाशिरामविरचित-

भाषाटीकासहितानि ।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण : अगस्त २००८, सम्वत् २०६५

मूल्य : ५० रुपये मात्र

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

जैमिनीयसूत्रकी विषयानुक्रमणिका ।



विषय.	पृष्ठ.

इति विषयानुक्रमणिका समाप्त।



॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ

जैमिनीयसूत्राणि ।

भाषाटीकासहितानि ।



यो हत्वा ध्वान्तमुखैः सुरमयति जनान्योजयन्कर्ममार्गे
आब्रह्मादेर्वयांसि क्षिपति स विभजन्नार्त्तवान्सर्वधर्मान् ।
यत्पन्थानं ह्युपेत्य व्रजति यतिगणो ब्रह्म निर्वाणधाम
तं ध्यात्वा हृत्सरोजे तमिह विरचये जैमिनेः सूत्रभाषाम् ॥

पूर्वजन्मार्जित कर्मज्ञानसे अनुष्ठान किये हुए काशीवासादि निज वृत्तसे जगत्को उद्धार करनेकी इच्छावाले करुणासमुद्र जैमिनिमुनि इस पारिप्सित ग्रंथके रोकनेवाले विघ्नकी शान्तिके लिये श्रीशंकर भगवान्को प्रणाम कर समस्त जनोंके शुभ अशुभ जतानेवाले जातकशास्त्रकी रचना करनेको प्रतिज्ञा करते हैं-

उपदेशं व्याख्यास्यामः ॥१॥

उंकार इस अक्षरके स्वामी जो कि शंकर भगवान् हैं तिनको प्रणाम करते हैं अथवा जिस करके पूर्वजन्मार्जित शुभ अशुभ कर्मोंका फल प्रगट किया जाता है ऐसे उपदेशनाम जातकशास्त्रविशेषको कहते हैं ॥ १ ॥

इस शास्त्रमें अन्य शास्त्रवत् ही दृष्टिविचार है अथवा अन्य शास्त्रसे विलक्षण है ? इस संशयको दूर करते हुए कहते हैं-

अभिपश्यन्त्यृक्षाणि ॥ २ ॥ पार्श्वभे च ॥ ३ ॥

ऋक्षनाम राशि अपने सन्मुख और पार्श्वराशिको देखते हैं। भाव यह है कि चरसंज्ञक मेष, कर्क, तुला, मकरराशि अपने पंचम,

---

१ " उकारः शंकरः प्रोक्तः " इत्येकाक्षरकोशः ॥

अष्टम, एकादश राशिको देखते हैं और स्थिरसंज्ञक वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भराशि अपने षष्ठ, तृतीय, नवमराशिको देखते हैं और द्विस्वभावसंज्ञक मिथुन, कन्या, धनु, मीनराशि अपने चतुर्थ, सप्तम, दशम राशिको देखते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ राशिदृष्टिचक्रम् ।

	चरसंज्ञक.				स्थिरसंज्ञक.				द्विस्वभावसंज्ञक.			
द्रष्टा	मे.	क.	तु.	म.	वृष	सिं.	वृ.	कुं.	मि.	क.	ध.	मी.
दृश्य	५ सिं.	५ वृ.	५ कुं.	५ वृष	३ क.	३ तु.	३ म.	३ मे.	४ क.	४ ध.	४ मी.	४ मि.
दृश्य	८ वृ.	८ कुं.	८ वृष	८ सिं.	६ तु.	६ म.	६ मे.	६ क.	७ ध.	७ मी.	७ मि.	७ क.
दृश्य	११ क.	११ वृष.	११ सिं.	११ तु.	९ म.	९ मे.	९ क.	९ तु.	१० मि.	१० मि.	१० क.	१० ध.

इसके अनन्तर ग्रहोंका भी द्रष्टृदृश्यभाव कहते हैं-

तन्निष्ठाश्च तद्वत् ॥ ४ ॥

तिन चरादिराशियोंमें स्थित हुए ग्रह भी उन चरादिराशियोंके समान राशिको देखते हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार चरादिराशि अपने अष्टमादि राशियोंको देखते हैं तिसी प्रकार चरादिस्थ ग्रह भी

---

१ इस प्रकारकी दृष्टिमें प्रमाण वृद्धकारिकाका है-‘ चरं धनं विना स्थास्तु स्थिरमन्त्यं विना चरम् । युग्मं स्वेन विना युग्मं पश्यतीत्ययमागमः॥”
अर्थ-चरराशि अपने द्वितीय स्थिरराशिको छोडकर अन्य समस्त स्थिरराशियोंको देखता है और स्थिरराशि अपने पिछले चरराशिको छोडकर अन्य समस्तचरराशियोंको देखता है और द्विस्वभावराशि अपने प्रथम स्थानको छोडकर अन्य समस्त द्विस्वभाव राशियोंको देखता है। अन्यच्च-“चरा नाग ८ बाणे ५ श ११ राशीन्स्वतो वै स्थिराः षट् ६ तृतीया ३ ङ्क ९ राशीन् क्रमेण । स्वतः शैलभं ७ वेदभं ४ पंक्तिभं १० च क्रमाद् द्विस्वभावः प्रपश्यन्ति पूर्णम् ॥ ” इति राशिषु सिद्धम् ॥

अपनेसे अष्टमादि राशियोंको और उनपर युक्त हुए ग्रहोंको देखता है जैसे चर राशिपर जो कि ग्रह स्थित हो वह ग्रह अपनेसे अष्टम, पञ्चम, एकादश राशि और अष्टम, पञ्चम, एकादश स्थानस्थित ग्रहोंको देखता है और जो कि ग्रह स्थिर राशिपर स्थित हो वह षष्ठ, तृतीय, नवम राशि और ग्रहोंको देखता है और जो कि ग्रह द्विस्वभाव राशिपर स्थित हो वह चतुर्थ, सप्तम, दशम राशि और ग्रहोंको देखता है ॥ ४ ॥

"शुभार्गले धनसमृद्धिः" इत्यादि प्रथमाध्यायके तृतीयपादमें आया है कि शुभ अर्गल होवे तो धनकी वृद्धि होवे है सो अर्गल किसका नाम इसीको कहते हैं–

दारभाग्यशूलस्थार्गला: ॥ ५ ॥

जिस राशिका विचार किया जावे उस राशिका निधाता नाम जो कि देखनेवाला है उससे दार नाम चतुर्थ और भाग्य नाम द्वितीय और शूलनाम एकादश स्थानपर जो ग्रह होवें वे ग्रह विचार किये जानेवाले राशिके देखनेवाले ग्रहके अर्गलासंज्ञक होते हैं । अर्गलाको कर्तरी भी कहते हैं ॥ ५ ॥

---

१ इस प्रकार ग्रहदृष्टिमें वृद्धवाक्य प्रमाण है " चरस्थं स्थिरगः पश्ये-त्स्थिरस्थं चरराशिगः । उभयस्थं तूभयगो निकटस्थं विना ग्रहम् ॥ "

अर्थ–स्थिरराशिपर स्थित हुआ ग्रह चरराशिपर स्थित हुए ग्रहको देखता है परन्तु निकटके चरराशिपर स्थित हुए ग्रहको नहीं देखता है इसी प्रकार निकटके स्थिरराशिपर स्थित हुए ग्रहको छोडकर अन्य स्थिरराशिपर स्थित हुए ग्रहको चरराशिपर स्थित हुआ ग्रह देखता है और साथके द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रहको छोडकर द्विस्वभावराशिस्थ ग्रह शेष द्विस्वभावस्थ ग्रहको देखता है ॥

२ " निधातुः " इस सूत्र पदकी व्याख्या स्वाम्यादि आचार्योंने तो " फलदातुः " इस प्रकार की है परन्तु यहांपर वृद्धवाक्यसे "द्रष्टु" इस–

यह अर्गला शुभग्रह तथा पापग्रह दोनोंकेही योगसे होनेवाली कही गई। अब केवल पापग्रहोंके योगसे होनेवाली अर्गलाको कहते हैं-

कामस्था भूयसा पापानाम् ॥ ६ ॥

पापग्रह अर्थात् सूर्य और कृष्ण पञ्चमीसे लेकर शुक्ल पञ्चमीतकका चन्द्रमा और मङ्गल और पापग्रहोंके साथका बुध और शनैश्चर तथा राहु और केतु इनमेंसे तीन वा तीनसे अधिक पापग्रह जिस राशिके तृतीय स्थानपर स्थित होवें तौ उस राशिके देखनेवाले ग्रहके अर्गलासंज्ञक होते हैं । सूत्रमें पापग्रहोंका बाहुल्य कह-

---

-प्रकारही अभिप्रेत है क्योंकि कहा है । "अय २ पुण्य ११ विना ४ भावाद्द्रष्टुराहुः शुभार्गलम्" इस ग्रंथमें कटपयादि क्रमकरके अंक ग्रहण करनेयोग्य हैं क्योंकि उन्हीं अंकोंसे राशिभावज्ञान होता है । कटपयादि क्रमसे आये हुए अंक १२ से अधिक होवें तो १२ के भागसे बचा हुआ राशिभाव जानना। कटपयादि क्रमसे अंक ग्रहण करनेमें प्राच्यकारिका प्रमाण है । "कटपयवर्गभवैरिह पिण्डान्त्यैरक्षरैरंकाः । नञि च शून्यं ज्ञेयं तथा स्वरे केवले कथितम् ॥" अर्थ-ककारसे लेकर क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. झ. ञ. यहांतक और टकारसे लेकर ट. ठ. ड. ढ. ण. त. थ. द. ध. न. यहांतक और पकारसे लेकर प. फ. ब. भ. म. यहांतक और यकारसे लेकर य. र. ल. व. श. ष. स. ह. यहांतक इन चारों पिण्डोंमें राशिभावसूचक अक्षर जिसपर हो उस संख्याको ग्रहण कर वाम रीतिसे लिखता चला जाय। यदि संख्यामें नकार ञकार आ जावें तौ शून्य ले लेवें । यदि व्यञ्जन वर्जित केवल स्वर आ जावे तौभी शून्य लेवे । यदि यह संख्या १२ से अधिक होवे तौ १२ का भाग देवे । जो अंक शेष बचे वहही राशिभावसंज्ञक है । उदाहरण-दार इस भावसूचक पदमें दकारकी संख्या ८ है और रकारकी संख्या दो, अब दोनोंको वामगतिसे रखनेसे २८ हुए इनमें १२ का भाग देनेसे ४ बचे यह ही दारभावकी संख्या है अर्थात् चतुर्थस्थान दारसंज्ञक है । इसी प्रकार समस्तभाव जानने चाहिये । संख्याक्रम चक्रमें है । "दार-

नेसे तृतीय स्थानपर एक वा दो पापग्रह होवें तो अर्गला नहीं होती है यह अर्गला पापसम्बंधिनी कही ॥ ६ ॥

इसके अनन्तर प्रथम कही हुई अर्गलाके बाधा करनेवाले योगको कहते हैं ।

रिः [१०]फंनिच[१२]कौ[३]मैस्था विरोधिनः ॥ ७ ॥

जिस राशिका विचार किया जावे उस राशिके देखनेवाले ग्रहसे यदि दशम स्थानपर कोई ग्रह होवे तो चतुर्थ स्थानमें स्थित हुए अर्गलाकारक ग्रहका बाधक होता है और बारहवें स्थानपर यदि कोई ग्रह होवे तो द्वितीय स्थानमें स्थित हुए अर्गलाकारक ग्रहका बाधक होता है और यदि तृतीय स्थानपर स्थित कोई ग्रह होवे तो ग्यारहवें स्थानपर स्थित हुए अर्गलाकारक ग्रहका विरोधी होता है । भाव यह है कि चतुर्थ, द्वितीय, एकादश स्थानपर स्थित हुए अर्गलाकारक ग्रहोंकी अर्गला तब नहीं होता है जब कि क्रमसे दशम, द्वादश, तृतीय स्थानपर ग्रह स्थित होवें ॥ ७ ॥

-भाग्यशूलस्थाः अर्गला निधातुः" इसमें विसर्गका लोपश्रू करनेपर संधि हुई है । यह छान्दस है क्योंकि सूत्रभी छन्दोवत् होते हैं इति ॥

कटपयादिसंख्याचक्रम्.

क १	ख २	ग ३	घ ४	ङ ५	च ६	छ ७	ज ८	झ ९	ञ
ट १	ठ २	ड ३	ढ ४	ण ५	त ६	थ ७	द ८	ध ९	न
प १	फ २	ब ३	भ ४	म ५					
य १	र २	ल ३	व ४	श ५	ष ६	स ७	ह ८		

१ इस सूत्रकी कोई प्रेमनिधि आदिक पण्डित ऐसी व्याख्या करते हैं। पापग्रहोंके मध्यमें जो अधिक अंशवाला हो वह यदि तृतीय स्थानपर होवे तो अर्गला होवे है । यह व्याख्या सूत्राक्षरोंसे असंगत प्रतीत होवे है क्योंकि सूत्रसे तो पापबाहुल्यही सिद्ध होता है। अन्य अर्गलाके बाधक योग हैं परंतु तृतीयस्थानस्थित बहु पापग्रहोंकर करी हुई अर्गलाका कोई बाधक योग नहीं है इस कारण यह सूत्र पृथक् किया है पूर्वसूत्रमें संमिलित नहीं किया।

इसके अनन्तर अर्गलायोगके दूर करनेवाल योगकेभी दूर करनेवाले योगको कहते हैं–

न न्यूना विद्लाश्च ॥ ८ ॥

यदि अर्गलाकारक ग्रहोंसे अर्गलाके दूर करनेवाले ग्रह अल्प संख्यावाले हों अथवा अर्गलाकारक ग्रहोंसे अर्गलाके दूर करनेवाले ग्रह निर्बल होवें तो वह अर्गलाके दूर करनेवाले ग्रह अर्गलायोगको दूर नहीं कर सकते हैं । भाव यह है कि जैसे अर्गलाकारक ग्रह दो होवें और अर्गलाके दूर करनेवाला एकही होवे तौ अर्गलायोग रहता है और यदि अर्गलाकारक ग्रहोंसे अर्गलाप्रतिबंधक ग्रह निर्बली होवें तौभी अर्गलायोग रहता है । ग्रहोंके बल अगाडी केहेंगे ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर अर्गलाकारक और अर्गलाप्रतिबंधक योगको कहते हैं–

प्राग्वत् त्रिकोणे ॥ ९ ॥

त्रिकोणनाम पंचम और नवम स्थानमें ग्रह होनेपर पूर्ववत् अर्गला और अर्गलाप्रतिबन्धक योग होता है । भाव यह है कि, जिस राशिका विचार किया जावे उस राशिके देखनेवाले ग्रहसे पंचम स्थानमें ग्रह होवें तौ अर्गला होवे है और यदि उसी देखनेवाले ग्रहसे नवम स्थानमें कोई ग्रह होवें तौ अर्गलाप्रतिबंधकयोग होता है परन्तु नवमस्थानस्थित ग्रह अल्प संख्यावाले और निर्बली

---

१ अर्गलाकारक योग और अर्गलाप्रतिबन्धक योग विद्वानोंनेभी कहे हैं । " भय २ पुण्य ११ विना ४ भावाद् द्रष्टुराहुः शुभार्गलम् । स्फुटा १२ ग ३ ज्ञेय १० भावात्तु विपरीतार्गलं विदुः" ॥ अर्थ–जिस राशिका विचार किया जावे उस राशिके देखनेवाले ग्रहसे भयनाम द्वितीय और पुण्यनाम एकादश और विनानाम चतुर्थ स्थानपर कोई ग्रह होवे तो अर्गला होवे है परन्तु उक्त स्थानपर राहु होवे तौ शुभ अर्गला होवे है और यदि उसी देखनेवाले ग्रहसे स्फुट नाम द्वादश और अंग नाम तृतीय और ज्ञेय दशम भावमें ग्रह होवे तौ क्रमसे द्वितीय एकादश चतुर्थ स्थानस्थित अर्गलाकारक ग्रहोंके प्रतिबन्धक होवे हैं अर्थात् अर्गलाके दूर करनेवाले होते हैं ॥

होवें तो पंचम स्थानास्थित ग्रहकी अर्गलाको दूर नहीं कर सकते हैं[1] ॥ ९ ॥

इसके अनन्तर केतुग्रहके लिये कुछ विशेष कहते हैं-

विपरीतं केतोः ॥ १० ॥

केतुग्रहका नवम अर्गलास्थान है और पञ्चम अर्गलाप्रतिबन्धक स्थान है। भाव यह कि, केतुके कोई ग्रह नवम स्थानमें स्थित होवें तो अर्गला होवे है और उसी केतुसे कोई ग्रह अल्प संख्या और

---

१ यदि कहो कि दार ४ भाग्य २ शूलेत्यादि सूत्रमें शान्त ५ पदके ग्रहणसे और रिःफ १० नीचेत्यादि सूत्रमें धातु ९ पदके ग्रहणसे अर्गला और अर्गलाप्रतिबन्धक योगका लाभ होही सकता फिर " प्राग्वत् त्रिकोणे " इस सूत्रकी रचना व्यर्थ क्यों करी ? समाधान-" विपरीतं केतोः " इस सूत्रमें केतुकी जो कि अर्गला और अर्गलाप्रतिबन्धक योगमें विपरीतता कही है वह त्रिकोणनाम पञ्चम और नवमस्थानकेही विषे कही है। न कि अन्य स्थानोंके विषे इस कारण " प्राग्वत त्रिकोणे " इस सूत्रकी पृथक् आवश्यकता है। यदि इस सूत्रको पृथक् न करते तौ दारभाग्यशूलेषु इत्यादिकमें केतुकृत विपरीतता सिद्ध हो जाती और जो कि कोई एक आचार्योंने कहा कि " प्राग्वत् त्रिकोणे " इस सूत्रके पृथक करनेके सामर्थ्यसे यह अर्गला अप्रतिबन्धक है। यदि उन आचार्योंके मतसे यह अर्गला अप्रतिबन्धक होती तौ प्रसंगसे " कामस्था तु भूयसा " सूत्रके अनन्तर इसकी रचना होती और जो यह कहो कि " विपरीतं केतोः " इसकर केतुकृत विपरीतता सब जगह हो सकती है सोभी नहीं क्योंकि " कामस्था " इत्यादि सूत्रके अनन्तर "प्राग्वत्" यह सूत्र होता तौ केतुकृत विपरीतता सब जगह हो सकती परन्तु " प्राग्वत्" इस सूत्रके अनन्तर " विपरीतं केतोः " इस सूत्रके रचनेसे " प्राग्वत " इसी सूत्रमेंही केतुकृत विपरीतता है न कि अन्य जगह और जो यह कहो कि " विपरीतं केतोः " इस सूत्रका अगले " आत्माधिकः " इत्यादि सूत्रमें अन्वय हो सकता है सोभी नहीं क्योंकि " अष्टानां वा " यह जो कि पद सूत्रमें पृथक् रचा है इसीके सामर्थ्यसेही राहुके न्यूनांश होनेपर कारकत्वका लाभ होगया है फिर इस अन्वयकी तौ व्यर्थताही रही और जो यह हो कि "अष्टानां वा" यह पद सूत्रमें अन्यमतसे है सो इसमें कुछ प्रमाण नहीं है ॥

निर्बलत्वदोषवर्जित होकर पंचम स्थानमें भी स्थित होवे तौ नवम-स्थानस्थित ग्रहकी अर्गला नहीं होवे है ॥ १० ॥

इस ग्रंथके विशेषकर कारकोंसे फलादेश किया जाता है इस कारण कारकोंके कहनेकी इच्छावाले मुनि प्रथम आत्म-कारकको दिखाते हैं--

आत्माधिकःकलादिभिर्नभोगःसप्तानामष्टानां वा ॥११॥

सूर्यसे लेकर शनैश्चरपर्यंत सात ग्रह अथवा राहुपर्यन्त आठ ग्रहोंके मध्यमें जो कि ग्रह अंश कलादिककर सब ग्रहोंसे अधिक हो तो वह ग्रह आत्मकारक होता है । भाव यह है कि सूर्य, चंद्रमा, भौम, बुध, गुरु, भृगु, शनि, राहु इन ग्रहोंमें जिस ग्रहके अंश अधिक होवें अथवा अंशोंके बराबर होनेपर कला वा विकलाही अधिक होवे तो वह ग्रह आत्मकारक होता है और यदि दो तीन ग्रहोंके अंश कला विकला सब बराबर होवें तो उनमें जो कि बली होवे सो ही आत्मकारक होता है और दो तीन ग्रहोंके अंशादिककी समता होनेपर बलवान् स्थिरकारकसे ही तत्तत्कारकोंका विचार करने योग्य है । जैसे प्रथम आत्मकारकके देखनेमें ही दो तीन ग्रहोंके अंशादि समान होवें तो उनमें जो कि बली होय उससेही आत्म-कारक जाने इसी प्रकार अन्य कारकोंका विचार करे ॥ ११ ॥

---

१ शङ्का-"आत्माधिकः कलादिभिर्नभोगोऽष्टानाम्" ऐसा पाठ थोडा होनेसे होवो ? समाधान-सूत्रमें "अष्टानां वा" इस अधिक पदके स्थित होनेसे सर्व ग्रहोंके अंशोंसे राहुके कम अंश होनेसेही आत्मकारकता होतीहै इस वार्ताके जतानेके लिये "अष्टानां वा" यह पद पृथक् कहा है । क्योंकि राहुकी विपरीत गति होनेसे राहुके कम अंश होनेसेही राहुकी अधिकता है। "नभोगोऽष्टानाम्" ऐसा यदि पाठ होता तौ अन्य ग्रहकी रीतिकर राहु-कीभी अधिकता प्रतीत हो सकती सो है नहीं इस कारण राहुकी न्यूनताही अधिकता मानी जाती है । दूसरा कारण यह है कि, जब दो तीन ग्रहोंका ग्रहत्व योगमें प्रसंग होता है तब "राहोर्योगे विपरीतम्" इस द्वितीयाध्या-

इसके अनन्तर आत्मकारकका उत्कर्ष कहते हैं—

स ईष्टे बन्धमोक्षयोः ॥ १२ ॥

सो यह कहा हुआ आत्मकारक नीच राशि पापयोगसे बन्धनका स्वामी होता है और उच्चादि राशि शुभयोगसे मोक्षका स्वामी होता है। भाव यह है कि नीच तथा पापग्रहसे युक्त होकर आत्मकारक अपने दशान्तर्दशामें बंधनादि दुःख देनेवाला होता है और उच्चादि शुभग्रहसे युक्त होकर आत्मकारक अपने दशान्तर्दशामें

यके प्रथम पादसम्बन्धी ५० सूत्रकर राहुके योगमात्रसेही कम अंशवाला ग्रह ग्रहा होता है फिर स्वयं राहुको कम अंश होनेसे कारक होनेमें क्या आश्चर्य है, यहांपर वृद्धवाक्यभी है कारकनिर्णयमें "भागाधिकः कारकः स्यादल्पभागोऽन्त्यकारकः। मध्यांशो मध्यखेटः स्यादुपखेटः स एव हि ॥" कदाचित् कहो कि इस वृद्धवाक्यसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि राहु अल्पांश होनेपर आत्मकारक होता है तहां कहते हैं कि शास्त्रप्रसिद्ध होनेसे बाल भी ऐसा जानते हैं कि राहु अल्पांशही अधिक माना जाता है इसी कारण पृथक् करके नहीं कहा है। राहुके अल्पांश होनेपर कारकत्व होनेमें वृद्धवाक्यान्तरभी है। "मेषाद्यपसव्यमार्गेण राहुकेतू न कारकौ" अर्थ–राहु केतु दक्षिणमार्ग अर्थात् मेषवृषादि क्रमकरके कारक नहीं हो सकते किन्तु विपरीत क्रमकरके कारक होते हैं कारकनिर्णयमें राशियोंकी अधिकता अपेक्षित नहीं है किन्तु अंशादिकी अधिकता अपेक्षित है यह संप्रदाय है। अथवा अंशादिककर दो ग्रह बराबर होवेंगे तौ सप्तम कारक नहीं होगा इस कारण राहुकाभी ग्रहण किया है। "अष्टानां वा" इस पदके द्वारा और जो कि प्रेमनिधि आदिकोंने "विपरीतं केतोः" इस सूत्रका "आत्माधिकः" इस सूत्रमें देहलीदीपकन्याय कर अन्वय किया है सो अयुक्त है। क्योंकि सूर्यादिक्रम त्यागकर प्रथम केतुका निरूपण करना अयोग्य है और ऐसा अर्थभी नहीं हो सकता कि राहुकी अंशाधिकतासे कारकता है और केतुकी अल्पांशतासे कारकता है, क्योंकि राहु केतुके अंशादि बराबर रहते हैं। शंका–ग्रह तो नौ हैं फिर सूत्रमें "नवानाम्" ऐसा क्यों नहीं कहा ? समाधान–राहु केतु अंशादि समान होते हैं इस कारण अन्यकारक नहीं हो सकता इसीसे "अष्टानाम्" यह पाठ सूत्रमें उचित है॥

अन्यग्रहके बलसे बंधे हुएका भी मोक्षणकर्त्ता होवे है अथवा आत्मकारक प्रतिकूल होकर पाप कर्मप्रवृत्तिद्वारा संसाररूप बन्धन देनेवाला होता है और अनुकूल होकर ज्ञान काशीवासादि साधनोंकर मोक्षकर्त्ता होवे है ॥ १२ ॥

इनके अनन्तर अमात्यकारक कहते हैं-

तस्यानुसरणादमात्यः ॥ १३ ॥

उस आत्मकारक ग्रहसे जो कि न्यून अंशादिवाला ग्रह है वह अमात्यकारक होता है। भाव यह है कि, आत्मकारकसे जिस ग्रहके अंश कलादि कम होवें वह ग्रह अमात्यकारक होता है। अमात्यकारक ग्रह उच्चादिमें स्थित हो वा शुभ ग्रहसे युक्त होवे तौ राजा वा मंत्री वा स्वामी इत्यादिकोंसे सुख होता है और नीचादि स्थानमें स्थित हो वा पापग्रहसे युक्त हो तो राजादिकोंसे अधिक दुःखादि होता है ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर भ्रातृकारक कहते हैं-

तस्य भ्राता ॥ १४ ॥

और उस अमात्यकारक ग्रहसे जिस ग्रहके अंशादि कम होवें वह भ्रातृकारक होता है। भ्रातृकारकसे भ्रातादि सुखदुःखादिका निर्णय होता है॥ १४ ॥

इसके अनन्तर मातृकारक कहते हैं-

तस्य माता ॥ १५ ॥

मातृकारक ग्रहसे जिस ग्रहके अंशकलादि कम होवें वह मातृकारक होता है। मातृकारकसे मात्रादिसुखदुःखादिका निर्णय होता है ॥ १५ ॥

इसके अनन्तर पुत्रकारक कहते हैं-

तस्य पुत्रः ॥ १६ ॥

मातृकारक ग्रहसे जिस ग्रहके अंशकलादि कम होवें वह पुत्रकारक होता है। पुत्रकारकसे पुत्रादि सुखदुःखादिका निर्णय होता है ॥१६॥

इसके अनन्तर ज्ञातिकारक कहते हैं-

तस्य ज्ञातिः ॥ १७ ॥

पुत्रकारकसे जिस ग्रहके अंशकलादि कम होवें वह ग्रह ज्ञातिकारक होता है । ज्ञातिकारकसे ज्ञातिका निर्णय होता है ॥ १७ ॥

इसके अनन्तर दारकारक कहते हैं-

तस्य दाराश्च ॥ १८ ॥

ज्ञातिकारक ग्रहसे जिस ग्रहके अशंकलादि कम होवें वह ग्रह स्त्रीकारक होता है । स्त्रीकारकसे स्त्रीसंबंधी विचार कर्त्तव्य[1] है ॥ १८ ॥

इसके अनंतर पुत्रकारकको मतांतरसे कहते हैं-

मात्रा सह पुत्रमेके समामनन्ति ॥ १९ ॥

मातृकारकसेही पुत्रकारकका विचार कर्त्तव्य है ऐसा कोई आचार्य कहते हैं अर्थात् मातृपुत्रकारकोंको एकही कहते हैं ॥१९॥

इस प्रकार चरकारक कहनेके अनंतर स्थिरकारक कहते हैं.

तिनमें प्रथम भगिन्यादिकारकोंको दिखाते हैं-

भगिन्यारतः श्यालः कनीयाञ्जननी चेति ॥ २० ॥

और नाम मंगलसे भगिनी नाम बहिनी और शाला और छोटा भ्राता और जननी नाम माता यह सब विचारे । यदि मंगल उच्चादिस्थानमें वा शुभग्रहयुक्त होवे तो भगिनी आदिका सुख कहना और यदि नीचादि पापग्रहयुक्त होवे तौ भगिन्यादिका दुःख कहना इसी प्रकार अन्य जगहभी विचार कर्त्तव्य है ॥ २० ॥

इसके अनन्तर मातुलादिकारकोंको कहते हैं-

मातुलादयो बन्धवो मातृसजातीया इत्युत्तरतः ॥ २१ ॥

भौमसे उत्तर जो कि बुध है तिससे मातुल और आदिपदसे

---

१ सूत्रमें चकार नहीं कहे हुएके कहनेके अर्थ है । समस्थिरकारक पदादिसे भी स्त्रीविचार कर्त्तव्य है । केवल दारकारकसेही नहीं है इस वार्त्ताको चकार जनाता है ॥

मामाके भ्राता भगिनी आदिक और बन्धुजन और माताकी सपत्नी यह विचारे ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर पितामहादिकारकोंको कहते हैं-

पितामहः पतिपुत्राविति गुरुमुखादेव जानीयात् ॥२२॥

गुरुमुख नाम बृहस्पत्यादिकसे पितामह नाम पिताका पिता और स्वामी और पुत्र यह सब विचारे । भाव यह है कि, बृहस्पतिसे पिताका पिता और शुक्रसे स्वामी और शनैश्चरसे पुत्रका विचार कर्त्तव्य है ॥ २२ ॥

इसके अनन्तर पत्न्यादि स्थिरकारक कहते हैं-

पत्नीपितरौ श्वशुरौ मातामहा इत्यन्तेवासिनः॥२३॥

अंतेवासी अर्थात् बृहस्पतिसे उत्तर जो कि शुक्र है उससे स्त्री और माता तथा पिता वा श्वश्रू और श्वशुर और माताका पिता यह सब विचारने योग्य है ॥ २३ ॥

जब कि दो तीन ग्रहोंके अंशकलादि समान होते हैं तब निसर्ग बलसेही कारक विचारा जाता है इस कारण

निसर्गबल कहते हैं-

मन्दो ज्यायान् ग्रहेषु ॥ २४ ॥

मन्द नाम शनैश्चर सातों ग्रहोंमें दुर्बल है । भाव यह है कि निसर्गबलमें शनैश्चरादिक उत्तरोत्तर बली हैं । जैसे शनैश्चरसे अधिक बली भौम और भौमसे बुध और बुधसे बृहस्पति और बृहस्पतिसे शुक्र और शुक्रसे चन्द्रमा और चन्द्रमासे सूर्य अधिक बली है ॥२४॥

---

१ ग्रहोंका निसर्ग बल बृहज्जातकमें कहा है "शकुबुगुभृचराद्यावृद्धितो वीर्यवन्तः।" अर्थ-शनैश्चर, कुज, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्र, सूर्य ये क्रमसे एक दूसरेसे अधिक बली हैं ॥

इसके अनन्तर चर दशाके वर्ष साधनेमें उपयोगी होनेसे
विषम समराशिभेद कर गणना कहते हैं–

प्राची वृत्तिविषमभेषु ॥ २५ ॥

विषमसंज्ञक जो कि मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ ये राशि हैं । इनके विषे क्रमसे गणना होती है । जैसे मेष, वृष, मिथुन इत्यादि रीतिसे ॥ २५ ॥

परावृत्त्योत्तरेषु ॥ २६ ॥

उत्तर नाम समराशि अर्थात् जो कि वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर मीन ये राशि हैं इन राशियोंके विषे उलटे क्रमसे गणना होती है; जैसे वृष, मेष, मीन, कुम्भ इत्यादि रीतिसे गणना होती है ॥२६॥

इसके अनन्तर क्रमव्युत्क्रमगणनाकी विपरीतता कहते हैं–

न क्वचित् ॥ २७ ॥

कहीं विषमराशियोके विषे क्रम नहीं है और कहीं समराशियोंके विषे व्युत्क्रम नहीं है । भाव यह है-विषमराशि सिंह और कुम्भमें क्रमसे गणना नहीं होती है किन्तु उलटे क्रमसे गणना होती है और समराशि वृष और वृश्चिकमें उलटे क्रमसे गणना नहीं होती सीधे क्रमसे गणना होती है ॥ २७ ॥

---

१ शंका-सूत्रमें तो क्वचित्पदका प्रयोग है । सिंह कुम्भ और वृश्चिक वृष इन राशियोंका तो ग्रहण नहीं है फिर भावार्थमें सिंह कुम्भ और वृष वृश्चिकका कैसे ग्रहण हो ? समाधान-परंपराकर वृद्धोंसे सुना है । "क्रमाद्‌ वृषे वृश्चिके च व्युत्क्रमात्कुम्भसिंहयोः ।" अर्थ-वृषवृश्चिकके विषे क्रमसे और सिंहकुम्भके विषे उलटे क्रमसे गिने १। शंका-इन सूत्रोंका तो फलितार्थ संग्रह यह हुआ । "मेषादित्रित्रिभेज्ञयं पदमोजपदे क्रमात् । दशाब्दानयने कार्या गणना व्युत्क्रमात्समे ॥ " अर्थ-मेषादि तीन२ राशियोंका पद होता है। विषमपदमें तो क्रमसे गिने और समपदमें दशा वर्ष लानेमें उलटे क्रमसे गिने १ इस फलितार्थसे "प्राची वृत्तिर्विषमपदे, परावृत्योत्तरे" इस प्रकार दोही सूत्र कहने थे फिर इसप्रकार कैसे नहीं कहे । जो इतना फेर–

इसके अनन्तर तत्तद्राशिके दशावर्ष लानेके लिये
अवधि दिखाते हैं—

नाथान्ताः समाः प्रायेण ॥ २८ ॥

राशिके स्वामीपर्यन्त जितनी संख्या होवे उतनेही वर्ष उस राशिके बहुधाकर होते हैं। भाव यह है कि, जिस राशिका स्वामी उस राशिसे जितनी संख्यापर हो उतनेही वर्ष उस राशिके चरदशामें होते हैं। जैसे मेष राशिका स्वामी मंगल मेष राशिसे द्वितीयस्थानपर होवे तो एक वर्ष, तृतीयपर होवे तो दो वर्ष, इसी क्रमसे बारहवें होवे तो ग्यारह वर्ष, मेष राशिके चरदशामें माने जांयगे और यदि स्वामी उसी निजराशिमें स्थित होवे तो बारह वर्ष उस राशिके माने जावेंगे ॥ २८ ॥

—कर अर्थ-तीन २ सूत्रोंमें किया? समाधान-"यावदीशाश्रयपदमृक्षाणाम्" इस सूत्रके वक्तव्य होनेसे संदेहके भयसे नहीं कहा और "मातृधर्मयोः सामान्यं विपरीतमोजकूटयोः" इस द्वितीयाध्यायके चतुर्थपादके २२ सूत्रके वक्तव्य होनेसेभी नहीं कहा ॥

१ स्वामीके निज राशिमें स्थित होनेसे उस राशिके बारह वर्ष होते हैं इसमें वृद्धवचन प्रमाण है। "तस्मात्तदीशपर्यन्तं संख्यामत्र दशां विदुः। वर्षद्वादशकं तत्र न चेदेकं विनिर्दिशेत ॥" अर्थ-राशिके वर्ष वह जानने जो कि संख्या स्वामिपर्यन्त होवे और जो स्वामी राशि एकही स्थानमें स्थित होवे तो उस राशिके बारह वर्ष जानने और जो स्वामी अपनी राशिमें स्थित न होवे तो एक ही वर्ष ग्रहण करे ऐसा कोई एक आचार्य कहते हैं। इसी कथनसे "प्रायेण" इस सूत्रपदसे "नाथान्ताः समाः" इसका निषेध जनाया गया है और सूत्रमें "प्रायेण" यह जो कि पद विद्यमान है इसकर यह जनाया गया कि जो स्वामी उच्च होवे तो दशामें राशिका एक वर्ष बढ जाता है और जो स्वामी नीच होवे तो राशिका एक वर्ष घट जाता है. सो वृद्धोंने कहाभी है। "उच्चखेटस्य सद्भावे वर्षमेकं विनिःक्षिपेत्। तथैव नीचखेटस्य वर्षमेकं विशोधयेत् ॥" अर्थ तो पूर्व कहही दिया है । "प्रायेण" इसी पदसे यहभी जनाया गया है कि वृश्चिक और कुम्भके दो २—

–स्वामी हैं।प्रमाण वृद्धवाक्य है।"कुजसौरी केतुराहू राजानावलिकुम्भयोः। कुजसौरी केतुराहू युक्तो तत्र स्थितौ यदि। वर्षद्वादशकं तत्र न चेदेकं विनिर्दिशेत्।" अर्थ–वृश्चिक राशिके मंगल और केतु दोनों राजा हैं और कुम्भराशिके शनैश्चर और केतु ये दोनों राजा हैं। भाव यह कि वृश्चिक राशिका राजा मंगल और केतु दोनोंमेंसे अकेला नहीं हो सकता किंतु दोनोंही राजा हैं। ये दोनों मिलकर अपने राशिपर स्थित होवें तो उस राशिके बारह वर्ष होते हैं और यदि अपने राशिपर एकही एक स्थित होवे तो स्वामी नहीं है और उस राशिके बारह वर्षकी नहीं हो सकते और यदि जिस स्थानमें ये दोनों मिलकर स्थित होवें तो उस स्थानतक गिननेसे जितनी संख्या होवे वह वर्ष इन वृश्चिक मकर राशियोंके होते हैं और जो दोनों स्वामी भिन्न २ स्थानोंपर स्थित होवें तो उनमें जो कि स्वामी बलवान् होवे उस स्वामीके स्थानतक गिननेसे राशिके वर्ष ग्रहण करे ऐसा वृद्धोंने कहाभी है। "द्विनाथक्षेत्रयोरत्र निर्णयः कथ्यतेऽधुना। एकःस्वक्षेत्रगोऽन्यस्तु परत्र यदि संस्थितः॥ तदान्यत्र स्थितं नाथं परिगृह्य दशां नयेत्।" अर्थ-दो स्वामियोंके राशिका निर्णय कहा है। एक ग्रह तो अपने राशिपर स्थित होवे और दूसरा अन्य राशिपर स्थित होवे तो जो कि ग्रह अन्य राशिपर स्थित है उसतक गिनकर दो स्वामीवाले राशिकी दशा लावे। "द्वावप्यन्यर्क्षगौ तौ चेत्स ग्रहो बलवान्भवेत्। ग्रहयोगसमानत्वे चिन्त्यं राशिबलाद्बलम्॥ चरस्थिरद्विस्वभावाः क्रमात्स्युर्बलशालिनः। राशिसत्त्वसमानत्वे बहुवर्षो बली भवेत्॥" अर्थ—तो दोनों स्वामी अपनी राशिसे अन्य राशिपर स्थित होवें तो उनमें कि बलवान् हो उसतक गिनकर राशिके वर्षोंका निश्चय करे। यदि दोनों स्वामी बलवान् होवें तो राशिबलसे ही बल जाने अर्थात् जो ग्रह राशिबलसे बली होवे उसतक गिकर राशिवर्षोंका निर्णय करे और यदि दोनों स्वामियोंका राशि बल भी समान होवे तो जिस ग्रहतक गिननेसे अधिक वर्ष आवे उस ग्रहतक गणना करे। चर स्थिर द्विस्वभाव यह राशि क्रमसे बली होते हैं। भाव यह है कि चरसंज्ञक राशिसे स्थिरसंज्ञक राशि बली है और स्थिर राशिसे द्विस्वभावराशि बली है। 'एकः स्वोच्चगतस्त्वन्यः परत्र यदि संस्थितः। ग्रहयेदुच्चखेटस्थं राशिमन्यं विहाय वै॥ नाथान्ता इति रीत्या यो बहुवर्षवती दशाम्। करोति बहुवर्षोऽसौ स्वराशेर्दूरगः खगः॥ एवं सर्व समालोच्य जातस्य निधनं वदेत्।" अर्थ—दोनों स्वामियोंमें एक स्वामी उच्चका होवे और दूसरा अन्य स्थानपर होवे तो उस स्वामी–

इसके अनंतर फलविशेषके जाननेके लिये राशियोंका
पद नाम आरूढस्थान कहते हैं-

यावदीशाश्रयं पदमृक्षाणाम् ॥ २९ ॥

-तक गिने जो कि उच्चका होवे और यदि दोनों स्वामियोंमें एक उच्चका होवे और दूसरा बहुत वर्षोंवाला होवे तोभी उसी ग्रहतक गणना करे जो कि ग्रह उच्चका होवे इस प्रकार दशा विचार करके उत्पन्न हुएका निधन कहे औरभी वृद्धोंने राशिबल कहा है "न्यासयोर्ग्रहहीनत्वे वैकस्यान्येन संयुतौ । ग्राह्यो राशिर्ग्रहाभावस्तत्स्वाम्युच्चगतो यदि ॥ एकत्र स्वर्क्षगः खेटश्चान्यत्र द्वौ ग्रहौ यदि । ग्रहद्वययुतिं हित्वा ग्राहयेत्पूर्वभं सुधीः ॥" अर्थ-लग्न और सप्तम स्थान इन दोनोंमें ग्रह न होवे अथवा दोनोंके मध्यमें एक स्थानपर स्वामीके विना कोई ग्रह होवे तो उन दोनोंमें जोकि राशि न्यायकर निर्बल होवे वहही राशि तब बलवान् होता है ॥ जब कि उस राशिका स्वामी उच्चका होवे तो और अन्य ग्रहयुक्त राशि बलवान् नहीं हो सकता और एक राशिमें तो स्वक्षेत्री ग्रह होवे और अन्य राशिमें दो ग्रह होवें तो उनमें जो कि राशि स्वमियुक्त होवे वही राशि बलवान् होता है न कि दो ग्रहयुक्त राशि बलवान् हो सकता है । राशियोंके स्वामी तथा उच्च अन्य जातकसे जानने । "क्षितिजसितज्ञचन्द्ररविसितावनिजाः । सुरगुरुमन्दसौरिगुरवश्च ग्रहांशकपाः" ॥ अर्थ-मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनैश्चर, शनैश्चर, बृहस्पति ये क्रमसे मेषादि राशियोंके स्वामी हैं । "अजवृषभमृगांगनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादि तुंगाः । दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः ॥" अर्थ-सूर्य मेषके १० अंशतक, चन्द्रमा वृषके तीन अंशतक, मंगल मकरके २८ अंशतक, बुध कन्याके १५ अंशतक, बृहस्पति कर्कके ५ अंशतक, शुक्र मीनके २७ अंशतक, शनैश्चर तुलाके २० अंशतक उच्चका होता है और यही ग्रह सातवें राशिमें नीच होता है । इस प्रकार ग्रह और राशिबलका चरदशामें विचार करे "पश्चा पदक्रमात् प्राक्प्रत्यक्त्वम्" इस द्वितीय अध्यायके तृतीयपादके २८ सूत्रके अभिप्रायसे जो लग्नसे नवममें विषमपद होवे तो तनु, धन, भ्रातृ, सुहृद आदिकोंकी दशाका भोग होता है । और यदि समपद होवे तो तनु, व्यय, आय, कर्म आदिकोंकी दशाका भोग होता है । दशाके आरम्भकी अवधि है । "चरदशायामत्र शुभः केतुः" इस द्वितीयाध्यायके तृतीय पादके २८ सूत्रके अभिप्रायसे इस दशाका नाम चरदशा है ॥

जितनी संख्यापर जिस राशिका स्वामी हो उस स्वामीसे उतनी संख्यापर जो कि राशि होवे वह राशि उस राशिका आरूढस्थान होता है। भाव यह है कि, जिस राशिका स्वामी अपनी राशिसे जितनी संख्यापर हो उतनी संख्या स्वामीसे लेकर जहां समाप्त होवे वह स्थान उस राशिका आरूढस्थान होता है[1] ॥ २९ ॥

इसके अनन्तर आरूढपदका उदाहरण दो सूत्रोंसे कहते हैं-

स्वस्थे दाराः ॥ ३० ॥

लग्नसे चतुर्थ स्थानमें लग्नस्वामी स्थित होवे तौ सप्तमस्थ राशि लग्नका आरूढस्थान है ॥ ३० ॥

सुतस्थे जन्म ॥ ३१ ॥

लग्नसे लग्नस्वामी सुत नाम सप्तमस्थानमें स्थित होवे तौ लग्नका आरूढपद लग्नराशिही होता[2] है ॥ ३१ ॥

इसके अनन्तर भावराशियोंके वर्णदस्थान कहते हैं-

सर्वत्र सवर्णा भावा राशयश्च ॥ ३२ ॥

समस्त भाव और राशि अपने वर्णद राशियोंसे संयुक्त होते हैं। भाव यह है कि, जिस भावका विचार करे उसका वर्णदराशि देखे

---

१ आरूढस्थानका निर्णय वृद्धोंने भी कहा है। "लग्नाद्यावतिथे तिष्ठेद्राशौ लग्नेश्वरक्रमात्। ततस्तावतिथं राशिं जन्मारूढं प्रचक्षते ॥" अर्थ-लग्नसे जितनी संख्यावाले राशिपर लग्नस्वामी स्थित हो उस स्वामीसे उतनीही संख्यावाली राशि लग्नका आरूढपद होता है ॥

२ इस उदाहरणमें और भी प्रमाण है। "यदा लग्नाधिपो लग्ने सप्तमे वा स्थितो यदि। आरूढं लग्नमेवात्र निर्दिशेत्कालवित्तमः ॥" अर्थ-जब कि लग्नस्वामी लग्नमें अथवा सप्तम स्थानपर स्थित होवे तौ लग्नका आरूढ पद लग्नराशि होता है ऐसा ज्योतिषी कहते हैं। "स्वस्थे दाराः, सुतस्थे जन्म" इन आरूढस्थानके उदाहरणरूप सूत्रोंकी जो कि कोई आचार्योंने यह व्याख्या की है कि लग्नस्वामी चतुर्थ स्थानमें स्थित होवे तो स्त्रियोंका विचार करे और लग्नस्वामी सप्तम स्थानमें स्थित होवे तौ मातृजन्मका विचार करे सो यह व्याख्या असंगत है॥

कि और जिस राशिका विचार करे उसकाभी वर्णदराशि देखे क्योंकि भाव और राशिके सब प्रकारके विचार करनेमें वर्णद राशिकी भी अपेक्षा होती है[1]। वर्णदराशिके बनानेका यह प्रकार है कि जो विषमराशिमें जन्मलग्न होवे तौ मेषसे क्रमपूर्वक जन्मलग्नतक गिने और यदि समराशिमें जन्मलग्न होवे तौ मीनसे उलटे क्रमसे अर्थात् मीन, कुम्भ, रीतिसे जन्मलग्नतक गिने जो कि अंक आवे उसको पृथक् रख देवे फिर होरालग्नको देखे कि होरालग्न विषमराशिमें है अथवा समराशिमें है। यदि होरालग्न विषमराशिमें होवे तौ मेष वृष इत्यादि रीतिसे

---

१ वर्णदराशिसे वृद्धोंने फलभी कहा है। " पापदृष्टिः पापयोगो वर्णदस्य त्रिकोणके। यदि स्यात्तर्हि तद्राशिपर्यन्तं तस्य जीवनम् ॥ रुद्रशूले तथैवायुर्मरणादि निरूप्यते । तथैव वर्णदस्यापि त्रिकोणे पापसंगमे ॥"

अर्थ--वर्णदराशिके पंचम नवम स्थानमें पापग्रहोंकी दृष्टि अथवा योग होवे तौ उसी राशिकी दशापर्यन्त उसका जीवन होता है और रुद्रसंज्ञक ग्रह जो कि अगाडी कहा जायगा उसके शूलयोगमें आयुका मरणादि कहा है और वर्णदराशिके नवम पंचम राशि यदि पापयुक्त होवे तो उसी राशिके दशापर्यंतमरण कहा है। अन्यच्च--"वर्णदात्सप्तमाद्राशेः कलत्रादि विचिन्तयेत्। एकादशादग्रजं तु तृतीयात्तु यवीयसम् ॥ पंचमे तनुजं विद्यान्मातरं तुर्यपञ्चमे। पितुस्तु नवमान्मातुः पंचमाद्वर्णदस्य तु। शूलराशिदशायां वै प्रबलायामरिष्टकम् । " अर्थ--वर्णद राशिसे जो कि सप्तम राशि है उससे कलत्रादिको विचारे और ग्यारहवें राशिसे बडे भ्राता और तृतीय राशिसे छोटे भ्राताओंको विचारे और पंचम राशिसे पुत्रको विचारे और चतुर्थ और पंचमसे माताको और नवमसे पिताको विचारे। वर्णदराशिमें पंचम राशिसे शूलदशा प्रबल होनेपर माताको अरिष्ट होता है और वर्णदराशिसे नवमराशिसे शूलदशा प्रबल होनेपर पिताको अरिष्ट होता है। कोई आचार्य इस सूत्रकी यह व्याख्या करते हैं इस समस्त ग्रंथमें भाव और राशि वर्णोंमें प्रतीत होते हैं। भाव यह है कि इस समस्त ग्रन्थमें जो कि भाव और राशि कहे जावेंगे उनकी प्रतीति अन्य शास्त्रके समान नहीं किन्तु एकादि संख्याके जतानेवाले अक्षरोंसे जाने जाते हैं। यह व्याख्या संमत नहीं क्योंकि " सिद्धमन्यत " इस अगाडी कहे जानेवाले सूत्रके अभिप्रायसे शिवतांडवादि ग्रन्थोंमें कटपयादि वर्णोंद्वारा जनाई हुई संख्या प्रसिद्ध है। इससे वर्णपद राशिपर है ऐसा जतानेके लिये यह सूत्र कहा है।

होरालग्नतक गिने और यदि समराशिमें होवे तो मीन कुम्भ इत्यादि रीतिसे होरालग्नतक गिने। जो अङ्क आवे उसको पृथक् रख देवे। यादि जन्मलग्न और होरालग्न दोनों स्त्रीसंज्ञक वा पुरुषसंज्ञक होवें तो उन आये हुए दोनों अंकोंको जोड देवे और यदि जन्मलग्न और होरालग्नमें एक स्त्रीसंज्ञक होय और दूसरा पुरुषसंज्ञक होय तो उन दोनों अंकोंको परस्पर घटावे। जो अंक जोडनेसे अथवा घटानेसे आवे वह यादि १२ से अधिक होवे तो १२ का भाग देवे जो बचे उतनी संख्या यदि जन्मलग्न विषम होवे तो मेष वृषादि क्रमसे और यदि जन्मलग्न सम होवे तो मीन कुम्भ इत्यादि क्रमसे जिस राशिपर समाप्त होवे वह राशि जन्मलग्नका वर्णदराशि होता है[1] ॥ ३२ ॥

---

१ वर्णदराशिके बनानेकी रीति इसी प्रकार वृद्धोंने कही है। "ओजलग्नप्रसूतानां मेषादेर्गणयेत् क्रमात्। युग्मलग्नप्रसूतानां मीनादेरपसव्यतः॥ मेषमीनादितो जन्मलग्नान्तं गणयेत्सुधीः। तथैव होरालग्नान्तं गणयित्वा ततः परम्॥ पुंस्त्वेन स्त्रीतया वैते सजातीय उभे यदि। तर्हि संख्ये योजयति वैजात्ये तु वियोजयेत्। मेषमीनादितः पश्चाद्यो राशिः स तु वर्णदः।" इन्हीं श्लोकोंके अर्थसे टीकामें वर्ण राशि बनानेकी रीति लिखी है इस कारण इनका अर्थ यहां प्रत्येक श्लोकानुसार नहीं किया। अब वर्णद दशाके बनानेकी रीति लिखते हैं। होरा और लग्नराशिमें जो राशि निर्बल होवे उससे वर्णद दशाका आरम्भ होता है क्योंकि कहा भी है "होरालग्नभयोर्नैया दुर्बलाद्वर्णदा दशा।" वर्णददशाके वर्ष लानेका विधान भी वृद्धोंने कहा है "यत्संख्या वर्णदो लग्नात्तत्तत्संख्या क्रमेण तु। क्रमव्युत्क्रमभेदेन दशा स्यात्पुरुषस्त्रियोः॥" अर्थ-लग्नसे जिस संख्यापर वर्णदराशि होवे सोई सोई संख्या क्रमसे विषम सम लग्नके अनुसार करके तिन २ राशियोंकी दशा होवे है। भाव यह है कि, जिस प्रकार कि "नाथान्ताः" इत्यादि सूत्रमें अपने २ राशिके स्वामी पर्यन्त वर्ष लाये गये हैं तिसी प्रकार यहां लग्नसे ही अपने वर्णद राशि पर्यन्त वर्ष लाये जाते हैं। जैसे लग्न मेष है और उसका वर्णद राशि मिथुन है। मेष विषम राशि है इस कारण क्रमसे मिथुन राशितक गिननेसे जो संख्या हुई ये वर्ष मेष लग्नके हुए और यदि लग्न समराशिमें होता तो लग्नसे उलटे क्रमसे वर्णद राशिसे गिननेसे जो संख्या-

इसके अनन्तर ग्रहोंके वर्णदका निषेध कहते हैं:-

न ग्रहाः ॥ ३३ ॥

सूर्यादिक ग्रह वर्णदराशिसहित नहीं होते हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार कि भाव और राशियोंके वर्णदराशि होते हैं तिस प्रकार ग्रहोंके वर्णदराशि नहीं होते हैं इस कथनसे यह जनाया गया कि भाव

-आती वही वर्ष लग्नके माने जाते। इसी प्रकार धनादि भावोंके राशियोंके वर्णद निकाल कर वर्णद राशितक धनादि भावोंसे पूर्वोक्त रीतिसे गिननेसे जो संख्या आवे वही धनादि भावोंके दशावर्ष होवेंगे। यह वार्ता सूत्रमें जो कि सर्वत्र पद है उससे जनाई है। यदि कहो कि वर्णदका बनाना और वर्णदशाका बनाना सूत्रसे नहीं सिद्ध होता फिर यहां कैसे कहा है? समाधान- "सिद्धमन्यत्" इस सूत्राभिप्रायसे अन्य ऋषियोंके शास्त्रद्वारा वर्णद और वर्णददशाका निश्चय होनेसे यहां सूत्रमें नहीं कहा और तिसी प्रकार है। अन्य शास्त्रके मतसे गुलिकका भी निश्चय किया जाता है। जिस प्रकार कि वर्णदराशि लग्नके विषम सम होनेसे मेष मीनादि गणना करके जन्मलग्न होरा लग्नपर्यन्त संख्यावशसे लाया जाता है तिसी प्रकार भावलग्नको जन्मलग्न कल्पना कर भावका वर्णदराशि बनाना चाहिये। भावलग्नका तथा होरा लग्न का बनाना वृद्धोंने कहा है। "सूर्योदयं समारभ्य घटिकानां तु पञ्चकम्। प्रयाति जन्मपर्यन्तं भावलग्नं तथैव च॥ तथा सार्धं द्विघटिकामितात्कालाद्विलग्नभात। प्रयाति लग्नं तन्नाम होरालग्नं प्रचक्षते॥" अर्थ-सूर्यके उदयसे लेकर जन्म इष्टपर्यन्त जितनी घटिका जावे उनमें पांचका भाग देवे लब्ध मिले वह राशि होते हैं। शेषको ३० से गुणाकर ५ का भाग देनेसे जो लब्ध मिले वह अंश होते हैं फिर शेषको ६० से गुणाकर ५ का भाग देनेसे जो लब्ध मिले वह कला होते हैं। यह राशि आदिक संख्या जन्मलग्नसे गिननेसे जहां समाप्त होवे वह भाव लग्न होता है। होरालग्न बनानेकी यह रीति है कि, इष्ट घटिकाओंमें अढाईका भाग देनेसे जो लब्ध मिले वह राशि और शेषको ३० से गुणाकर अढाईका भाग देनेसे जो लब्ध मिले वह अंश और इसी प्रकार कला निकले हैं। यह राशि आदिक संख्या यदि जन्मलग्न विषम होवे तो सूर्यके राशिमें गिननेसे और यदि जन्मलग्न सम होवे तो जन्मलग्नसे गिननेसे जहां समाप्त होवे वह राशि होरालग्न होता है।

राशियोंके वर्णदराशि होते हैं । सूर्यादि ग्रहोंके नहीं होते हैं[1] ॥ ३३ ॥

इसके अनन्तर अन्तर्दशाविभाग दिखाते हैं-

यावद्विवेकमावृत्तिर्भानाम् ॥ ३४ ॥

मेष, वृष, मिथुन इत्यादि राशियोंके मध्यमें प्रतिराशि जो कि चर स्थिरादि दशाओंमें सिद्ध हुए दशावर्ष हैं उन वर्षोंके बारह विभाग करके बारह राशियोंकी आवृत्ति होवे है । भाव यह है कि चरस्थिरादि संज्ञक दशाओंके विषे जो कि मेषादि बारह राशियोंके दशावर्ष हैं उनमें प्रत्येक राशिके दशावर्षोंके बारह भाग करे जितना प्रथम भाग हो उतने पर्यन्त उसी राशिकी अन्तर्दशा रहती है और जितना दूसरा भाग हो उतने पर्यन्त उस राशिदशामें दूसरी राशिकी अन्तर्दशा रहती है । जो लग्न विषमराशिमें होवे तो मेष, वृष, मिथुन इत्यादि क्रमसे अन्तर्दशाका भोग होता है और यदि लग्न सम होवे तो उलटे क्रमसे अर्थात् वृष, मेष इत्यादि रीतिसे अन्तर्दशाका भोग होता है[2] ॥ ३४ ॥

---

१ कोई आचार्य इस सूत्रकी यह व्याख्या करते हैं । जिस प्रकार भाव और राशि खवर्ण हैं अर्थात् संख्यावोधक अक्षरोंसे जाने जाते हैं तिस प्रकार ग्रहसंख्याबोधक अक्षरोंसे नहीं जाने जाते किन्तु अपने प्रसिद्ध पदों करके ही जाने जाते हैं ।

२ अन्तर्दशाविभाग वृद्धोंने कहा है । "कृत्वार्कधा राशिदशां राशेर्भुक्तिं क्रमाद्वदेत् । एवं दशान्तर्दशादि कृत्वा तेन फलं वदेत् ॥" अर्थ-राशिदशाके १२ विभाग करके राशिके अन्तर्दशाका भोग क्रमसे कहे इसी प्रकार समस्त दशाओंकी अन्तर्दशा करके उसीसे फल कहे । "एकैकभावस्यैकैकं वर्षं लग्नादि कल्पयेत् । सा पर्यायदशा लग्ने युग्मे तु व्युत्क्रमाद्वदेत् । लग्नं युग्मं यदा तर्हि सम्मुखे तस्य चादिभम् ।" अर्थ-दशावर्षमें एक २ भावके २ लग्नादिको कल्पना करे यह अन्तर्दशा होवे है । यदि लग्न सम होवे तो उलटे क्रमसे एक २ भावके एक २ लग्नादिको कहे । जैसे वृषसे मेष । सूत्रमें जो कि विवेकपदका ग्रहण है तिससे यह जाना जाता है कि जिस प्रकार-

इसके अनन्तर ग्रन्थान्तरप्रसिद्ध होरा द्रेष्काणादिकोंको उप-
लक्षणमात्र कहते हैं-क्योंकि, इस ग्रन्थमें कहे जानेवाले
सूत्रोंके विषे होराद्रेष्काणादिका ग्रहण है.

होरादयः सिद्धाः ॥ ३९ ॥

होरा और आदिशब्दसे द्रेष्काण, त्रिंशांश, सप्तांश, नवांश, द्वादशांश यह शास्त्रान्तरमें प्रसिद्ध हुई मेषादि गणना करके प्रसिद्ध है, किन्तु दृष्टि और अर्गलाके समान गुप्त नहीं इस कारण इनका विवरण यहां नहीं किया है[1] ॥ ३९ ॥

-एक राशिके १२ भाग होते हैं इसी तरह बारह राशियोंके अन्तर्दशामें एक सौ चवालीस भाग होते हैं और जो कि कोई आचार्योंने कहा है कि उपस्थित होनेसे दशाके आरम्भकी अवधि अपना अपना लग्न है सो यह भी नहीं क्योंकि कारिका वचन है । "होरालग्नभयोर्नेया दुर्बलाद्वर्णदा दशा" ॥

१ होरादिकोंके जाननेके विषयमें वृद्धवचन है । राशेरर्द्धं भवेद्धोरा ताश्चतुर्विंशतिः स्मृताः । मेषादि तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत् ॥ राशित्रिभागा द्रेष्काणास्ते च षट्त्रिंशदीरिताः । परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादेः क्रमशो भवेत ॥ सप्तांशकास्त्वोजगृहे गणनीया निजेशतः । युग्मराशौ तु विज्ञेयाः सप्तमर्क्षाधिनायकात ॥ नवांशेशाश्चर तस्मात् स्थिरे तन्नवमादितः । उभये तु तत्पञ्चमादेरिति चिन्त्यं विचक्षणैः ॥ द्वादशांशस्य गणना तत्तत्क्षेत्राद्विनिर्दिशेत ॥" होरा, द्रेष्काण, त्रिंशांश, सप्तांश, नवांश, द्वादशांश इस षड्वर्गके जाननेकी विधि चक्रोंमें लिखी है इस कारण इन श्लोकोंका अर्थ यहां नहीं लिखा है ॥

होराचक्रम्.

	मेष	वृषभ	मि.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनः	मकर	कुंभ	मीन	लग्नग्रह केराशि
१५अं शतक	सूर्य सिंह	चद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	होराके ग्रहराशि
३०अं शतक	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	होराके ग्रहराशि

द्रेष्काणचक्रम्.

	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनुः	मकर	कुम्भ	मीन	प.ल.रा.
१०अं शतक	मेष मंगल	वृषभ शुक्र	मिथुन बुध	कर्क चंद्रमा	सिंह सूर्य	कन्या बुध	तुला शुक्र	वृश्चि. मंगल	धनुः बृहस्प.	मकर शनि	कुम्भ शनि	मीन बृहस्प	द्रेष्काण. ग्रहराशि
२०अं शतक	सिंह सूर्य	कन्या बुध	तुला शुक्र	वृश्चिक मंगल	धनु बृहस्प.	मकर शनि	कुम्भ जनि	मीन बृहस्प.	मेष मंगल	वृषभ शुक्र	मिथुन बुध	कर्क चंद्रमा	द्रेष्काण. ग्रहराशि
३०अं शतक	धनुः बृहस्प.	मकर शनि	कुम्भ शनि	मीन बृहस्प.	मेष मंगल	वृषभ. शुक्र	मिथुन बुध	कर्क चंद्रमा	सिंह सूर्य	कन्या बुध	तुला शुक्र	वृश्चिक मगल.	द्रेष्काण. ग्रहराशि

विषमत्रिंशांशचक्रम्

	मेष	मि०	सिं०	तु०	ध०	कु०	ग्रहलग्नकेराशि
५	मं	मं	मं	मं	मं	मं	५ अंशतक
५	श	श	श	श	श	श	१० अंशतक
८	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	१५ अंशतक
७	बु	बु	बु	बु	बु	बु	२५ अंशतक
५	शु	शु	शु	शु	शु	शु	३० अंशतक

समत्रिंशांशचक्रम्.

	वृ०	क०	क०	वृ०	म०	मी०	ग्रहलग्नकी राशि
५	शु	शु	शु	शु	शु	शु	५ अंशतक
७	बु	बु	बु	बु	बु	बु	१२ अंशतक
८	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	२० अंशतक
५	श	श	श	श	श	श	२५ अंशतक
५	मं	मं	मं	मं	मं	मं	३० अंशतक

नवांशचक्रम्.

	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनुः	मकर	कुंभ	मीन	ग्रहल.रा.
३ अंश. २० क.	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चंद्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चंद्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चंद्र	३।२०
६ अंश. ४० क.	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	६।४०
१० अं तक	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनु बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनु बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनु बृहस्प.	कन्या बुध	१० अंश तक
१३ अं. २० क.	कर्क चंद्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चंद्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चंद्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	१३।२०
१६ अं. ४० क.	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	१६।४०
२० अं. तक	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प	धनुः बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनुः बृहस्प	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनुः बृहस्प.	२० अंश तक
२३ अ. २० क.	तुला शुक्र	कर्क चंद्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चंद्र	मेष. मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चंद्र	मेष मंगल	मकर शनि	२३।२०
२६ अ. ४० क.	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	२६।४०
३० अं. तक	धनु बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनुः बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनु बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	३० अंश तक

अथ द्वादशांशचक्रम्.

मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनुः	मकर	कुम्भ	मीन	ग्रहलग्नकेरा.
मे. मं.	वृ.शुक्र	मि.बुध	क. चं.	सिं.सू	क.बु.	तु.शु.	वृ.म.	ध. वृ.	म.श	कुं.श.	मी.बृ.	२अं० ३०क०
वृ.शुक्र	मि बुध	क.चंद्र	सिंसूर्य	क.बुध	तु. शु.	वृ. म.	ध. वृ.	म. श.	कुं.श.	मी.बृ.	मेष मं.	५ अंशतक०
मि.बुध	क.चंद्र	सिंसूर्य	क.बुध	तु. शु.	वृ. मं.	ध. बृ.	म. श.	कुं.श.	मी.बृ.	मेष.मं.	वृ. शु.	७ अं ३०क०
क.चंद्र	सिं.सू	क.बुध	तु. शु.	वृ. मं.	ध. बृ.	मं. श.	कु.श.	मी.बृ.	मेष मं	वृ. शु.	मि.बु.	१० अंशतक०
सिं.सू.	क.बुध	तु. शु.	वृ. मं.	ध. बृ.	म. श.	कुं. श.	मी.बृ.	मे.मं.	वृ.शु	मि.बु.	क.चं.	१२ अं३०क०
क.बुध	तु.शुक्र	वृ. मं.	ध.बृ.	म. श.	कुं.श.	मी. बृ.	मेष मं.	वृ. शु.	मि.बु	क.चं.	सिंसूर्य	१५ अंशतक०
तु.शु.	वृ. मं.	ध. बृ.	म. श.	कुं.श.	मी.बृ.	मेष मं.	वृ. शु.	मि.बु.	क.चं	सिं.सू.	क. बु.	१७.अं.३०क
वृ. .	धनुबृ.	म. श.	कुं. श.	मी.बृ.	मेष मं.	वृ. शु.	मि. बु.	क. चं.	सिं.सू.	क.बु.	तु. शु.	२० अंशतक०
ध. बृ	म. श.	कुं. श.	मी.बृ.	मेष.मं	वृ. शु.	मि.बु.	क. चं.	सिंसूर्य	क.बु.	तु. शु	वृ. मं.	२२अं३० क०
म. श.	कुं.श.	मी.बृ.	मेष.मं	वृ. शु.	मि.बु.	क. चं.	सिंसूर्य	क.बु.	तु.शुक्र	वृ. मं.	ध. बृ.	२५अंशतक.
कुं.श.	मी बृ.	मेष मं.	वृ.शु.	मि.बु.	क. चं.	सिं.सू.	क. बु.	तु.शु.	वृ.म.	ध. बृ.	म. श.	२७अं३०क०
मि.बृ.	मेष मं.	वृ. शु.	मि. बु.	क. चं.	सिंसूर्य	क. बु.	तु. शु.	वृ. म.	ध.बृ	म. श.	कुं. श.	३० अंशतक

अथ सप्तांशचक्रम्.

	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनुः	मकर	कुम्भ	मीन
४ अं. १७क. ८ विकलातक	मेष मंगल	वृश्चिक मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धनुः बृह.	कर्क चंद्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध
८अं. ३४क. १९ वि. तक	वृषभ शुक्र	धनुः बृह.	कर्क चंद्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चि. मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र
१२अं ५१क २४ वि. तक	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धनुः बृह.	कर्क चंद्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चि. मंगल
१७ अं.८क. ३२ वि. तक	कर्क चंद्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चि. मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धनुः बृह.
२१अं.२५क ४० वि. तक	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धनुः बृह.	कर्क चंद्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चि. मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि
२५अ.४२क ४८ वि. तक	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चिक मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र	वृषभः शुक्र	धनुः बृह.	कर्क चंद्र	कुम्भ शनि
३० अंशतक	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धनुः बृह.	कर्क चंद्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चि. मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.

इति श्रीजैमिनीयसूत्रे प्रथमाध्याये श्रीनीलकण्ठीयतिलकानुसृतभाषा-टीकायां श्रीपाठकमङ्गलसेनात्मजकाशिराम-विरचितायां प्रथमः पादः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयपादः ।

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशका फल कहनेको आरम्भ करते हैं–

अथ स्वांशो ग्रहाणाम् ॥ १ ॥

सूर्यादिक जो कि ग्रह हैं उन ग्रहोंके मध्यमें जो कि आत्मकारक है उस आत्मकारकका जो कि नवांश है उससे फल विचारने योग्य है ॥ १ ॥

प्रथम आत्मकारकके मेषादि नवांशोंका फल कहते हैं–

पञ्च मूषिकमार्जाराः ॥ २ ॥

यदि आत्मकारकमें मेषनवांश होवे तो मूषिक और मार्जार जीव दुःखदायक होते हैं ॥ २ ॥

तत्र चतुष्पादः ॥ ३ ॥

यदि आत्मकारकमें वृष नवांश होवे तो चार पांववाले पशु सुखकर्त्ता होवे हैं' ॥ ३ ॥

मृत्यौ कण्डूः स्थौल्यं च ॥ ४ ॥

यदि आत्मकारकमें मिथुननवांश होवे तो शरीरमें खाज और स्थूलता हो जाती है ॥ ४ ॥

---

१ शङ्का–मूषिकादिक दुःखदाई होते हैं और चतुष्पाद सुखदाई होते हैं यहांपर एक ही अपेक्षित है भिन्न २ अर्थ करनेमें क्या कारण है ? समाधान—इनमें वृद्धवचन प्रमाण है। वृषतौल्यंशकगते तस्मिन्वाणिज्यवान् भवेत् । मेषसिंहांशकगते ब्रूयान्मूषकदंशनम् । कारके कार्मुकांशस्थे वाहनात्पतनं भवेत् । अर्थ–यदि आत्मकारक ग्रह वृष वा तुलाके नवांशमें होवे तो वाणिज्य कर्मवाला होता है और यदि मेष वा सिंहके नवांशमें होवे तो मूषक भय होता है और धनुके नवांशमें होवे तो वाहनसे पतन होता है ॥

दूरे जलकुष्ठादिः ॥ ५ ॥

यदि आत्मकारकमें कर्कनवांश होवे तो जलसे भय और कुष्ठादिक रोग होता है ॥ ५ ॥

शेषाः श्वापदानि ॥ ६ ॥

यदि आत्मकारकमें सिंहनवांश होवे तो श्वान आदिक जीव दुःख देनेवाले होते हैं ॥ ६ ॥

मृत्युवज्जायाग्निकणश्च ॥ ७ ॥

यदि आत्मकारकमें कन्यानवांश होवे तो मिथुननवांशवत् फल होता है और अग्निकणभी दुःख देनेवाला होता है अर्थात् शरीरमें खाज और मोटापन तथा अग्निभय होता है ॥ ७ ॥

लाभे वाणिज्यम् ॥ ८ ॥

यदि आत्मकारकमें तुलानवांश होवे तो वाणिज्यकर्म करनेवाला होता है ॥ ८ ॥

अत्र जलसरीसृपाः स्तन्यहानिश्च ॥ ९ ॥

यदि आत्मकारकमें वृश्चिकनवांश होवे तो जल और सर्पादिक दुःख देनेवाले होते हैं और माताका स्तन्य नाम दुग्ध सूख जावे है ॥ ९ ॥

समे वाहनादुच्चाच्च क्रमात्पतनम् ॥ १० ॥

यदि आत्मकारकमें धनुर्नवांश होवे तो वाहनसे अथवा ऊंची जगहसे पतन होता है, परंतु वह पतन एकसाथ नहीं होता है किन्तु कहीं २ रुक रुक कर होता है ॥ १० ॥

जलचरखेचरखेटकण्डूदुष्टग्रन्थयश्च रिःफ ॥ ११ ॥

यदि आत्मकारकमें मकर नवांश होवे तो जलचारी मत्स्यादिक जीव और खेचर पक्षी और खेट नाम ग्रह ये फलदायक होते हैं तथा खाज और दुष्ट ग्रन्थि गण्डमाला आदिक रोग होते हैं ॥ ११ ॥

तडागादयो धर्मे ॥ १२ ॥

यदि आत्मकारकमें कुम्भनवांश होवे तो तडाग, बावडी, कूप आदिकोंके करनेवाले होते हैं ॥ १२ ॥

उच्चे धर्मनित्यता कैवल्यञ्च ॥ १३ ॥

यदि आत्मकारकमें मीननवांश होवे तो धर्मकी नित्यता और मोक्ष होता है[1] ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशका ग्रहस्थितिसे फल कहते हैं:-

तत्र रवौ राजकार्यपरः ॥ १४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें सूर्य स्थित होवे तो राजकर्म करनेवाला होता है ॥ १४ ॥

पूर्णेन्दुशुक्रयोर्भोगी विद्याजीवी च ॥ १५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें परिपूर्ण चन्द्रमा और शुक्र ये

---

१ आत्मकारकके नवांशादि शुणोंका फल वृद्धोंने कहा है। "शुभराशौ शुभांशे वा कारकांशे धनी भवेत्। तदंशकेन्द्रेषु शुभे राजा नूनं प्रजायते ॥" अर्थ-यदि आत्मकारक ग्रहका नवांश शुभ राशिमें अथवा शुभग्रहके नवांशमें होवे तो धनी होता है और यदि आत्मकारक ग्रहके नवांशके कुण्डलीमें जो कि केन्द्र होवे उनमें यदि शुभ ग्रह होवे तो निश्चय ही राजा होता है। अन्यच्च-कारके शुभराश्यंशे लग्नांशस्थे शुभग्रहे। उपग्रहस्य पाश्चात्योः स्वोच्चस्वर्क्षशुभर्क्षगे॥पापदृग्योगरहिते कैवल्यं तस्य निर्दिशेत्। मिश्रे मिश्रं विजानीयाद्विपरीते विपर्ययः॥" अर्थ-यदि आत्मकारक शुभग्रह होकर शुभराशिके नवांशमें और लग्नके नवांशमें स्थित होवे और उपग्रहके पिछाडी स्थित होवे और अपने उच्चका अथवा निज राशिका अथवा शुभग्रहके राशिका होवे और पापग्रहकी दृष्टि और योगसे वर्जित होवे तो मोक्ष होता है और यदि पापग्रह तथा शुभग्रह इन दोनोंकी दृष्टि वा योगसेही युक्त होवे तो मिश्रस्वर्गवास होता है और यदि केवल पापग्रहकी दृष्टिऔर योगसेही युक्त होवे तो न मुक्ति होती है न स्वर्गवास होता है। अन्यच्च-"चन्द्रभृग्वार्कवर्गस्थे कारके पारदारिकः।" अर्थ-यदि आत्मकारक चन्द्र, शुक्र, मंगल इसके वर्गमें स्थित होवे तो परस्त्रीसे भोग करनेवाला होता है॥

दोनों स्थित होवें तो भोगकर्ता और विद्यासे जीविका करनेवाला होता है ॥ १५ ॥

धातुवादी कौन्तायुधो वह्निजीवी ॥ १६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें भौम स्थित होवे तो धातुवादी नाम रसायनविद्यावाला और बरछी शस्त्र बांधनेवाला तथा अग्निसे जीविका करनेवाला होता है ॥ १६ ॥

वणिजस्तन्तुवायाःशिल्पिनो व्यवहारविदश्च सौम्ये १७

यदि आत्मकारकके नवांशमें बुध स्थित होवे तो वणिक् और वस्त्र बुननेवाला तथा शिल्पविद्यावान् और समस्त व्यवहार जाननेवाला होता है ॥ १७ ॥

कर्मज्ञाननिष्ठा वेदविदश्च जीवे ॥ १८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें बृहस्पति स्थित होवे तो वैदिककर्ममें निष्ठा रखनेवाला तथा ज्ञानी और वेदको जाननेवाला होता है ॥१८॥

राजकीयाः कामिनः शतेंद्रियाश्च शुक्रे ॥ १९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें शुक्र स्थित होवे तो राजाके अधिकारवाला और बहुत स्त्रियोंके भोगनेमें इच्छा रखनेवाला और सौ वर्ष पर्यन्त जीवन धारण करनेवाला होता है ॥ १९ ॥

प्रसिद्धकर्माजीवः शनौ ॥ २० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें शनैश्चर स्थित होवे तो लोकप्रसिद्ध कर्मसे जीविका करनेवाला होता है ॥ २० ॥

धानुष्काश्चौराश्च जाङ्गलिका लोहयंत्रिणश्च राहौ॥२१॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें राहु स्थित होय तो धनुष रखनेवाला और चोरी करनेवाला होता है अथवा जांगलिक और लोहयंत्र रखनेवाला होता है ॥ २१ ॥

गजव्यवहारिणश्चोराश्च केतौ ॥ २२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें केतु स्थित होवे तो हाथियोंका व्यवहार करनेवाला तथा चोर होता है ॥ २२ ॥

रविराहुभ्यां सर्पनिधनम् ॥ २३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें सूर्य और राहु दोनों स्थित होवें तो सर्पसे मृत्यु होती है ॥ २३ ॥

शुभदृष्टे तन्निवृत्तिः ॥ २४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुए सूर्य राहु ये दोनों शुभग्रहने देखे होवें तो सर्पसे मृत्यु नहीं होती है ॥ २४ ॥

शुभमात्रसंबन्धाज्जाङ्गलिकः ॥ २५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुए सूर्य राहुके विषे शुभग्रह मात्रका योग होवे तो जांगलिक नाम विषवैद्य होता है ॥ २५ ॥

कुजमात्रदृष्टे गृहदाहकोऽग्निदो वा ॥ २६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुए सूर्य राहु ये दोनों मंगलने देखे होंय तो अपने गृहको जलानेवाला अथवा आग्नि देनेवाला होता है ॥ २६ ॥

शुक्रदृष्टेर्न दाहः ॥२७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुए सूर्य राहु इन दोनोंपर शुक्रकी दृष्टि होवे तो गृहको जलानेवाला नहीं होता किन्तु अग्निका दाह मात्र करनेवाला होता है ॥ २७॥

गुरुदृष्टेस्त्वासमीपगृहात् ॥ २८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुए सूर्य राहुपर बृहस्पतिकी दृष्टि होवे और शुक्रकी दृष्टि न होवे तो समीप गृहपर्यंत दाह हो जावे, अपने गृहमात्रका दाह न होवे ॥ २८ ॥

सगुलिके विषदो विषहतो वा ॥२९ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश गुलिकसहित होवे तो दूसरेको विष देनेवाला तथा स्वयं विष खाकर मरनेवाला होता है ॥ २९ ॥

---

१ गुलिक बनानेकी रीति वृद्धोंने कही है "रविवारादिशन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते। दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद्गणयेत् क्रमात् ॥ अष्टमोंऽशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः। रात्रिमप्यष्टधा भक्त्वा वारेशात्पंचमादितः ॥ गणयेदष्टमः खण्डो निष्पत्तिः परिकीर्तिता। शन्यंशे गुलिकः प्रोक्तो गुर्वंशे यमघण्टकः ॥ भौमांशे मृत्युरादिष्टो रव्यंशे कालसंज्ञकः। सौम्यांशेऽर्द्धप्रहरकः स्पष्टकर्मप्रदेशकः ॥" अर्थ-रविवारसे लेकर शनैश्चरपर्यन्त गुलिकादि योग कहे हैं। दिनमानके आठ भाग करें और उस दिन जो वार होवे उससे क्रम करके गिने। आठवां भाग स्वामीकर वर्जित होता है अर्थात् आठवे भागका कोई स्वामी नहीं होता है। उन आठो भागोंमें जो कि शनैश्चरका भाग है यह गुलिक कहा है। इसी प्रकार रात्रिमानके आठ भाग करे और उस दिन जो वार हो उससे जो कि पांचवां वार है उससे क्रम करके गिने जो आठवां भाग हो वह स्वामिवर्जित होता है। उन आठो भागोंमें जो कि शनैश्चरका भाग है वह गुलिक होता है और जो कि बृहस्पतिका भाग है वह यमघंटक होता है और जो कि भौमका भाग है वह मृत्युयोगसंज्ञक होता है और जो कि सूर्यका भाग है वह कालयोगसंज्ञक है और जो बुधका भाग है वह अर्द्धप्रहरसंज्ञक है। जैसे रविवारके दिन दिनके सातवें भागमें और रात्रिके तीसरे भागमें गुलिकयोग रहता है और सोमवारके दिन दिनमें छठे भागमें और रात्रिके द्वितीय भागमें गुलिक योग रहता है और भौमवारके दिनके पांचवें भागमें और रात्रिके प्रथम भागमें गुलिक योग रहता है। इसी प्रकार बुधके दिन दिनके चतुर्थ भागमें और रात्रिके सप्तम भागमें और बृहस्पतिके दिन दिनके तृतीय भागमें और रात्रिके छठे भागमें और शुक्रके दिन दिनके द्वितीय भागमें और रात्रिके पञ्चम भागमें और शनैश्चर के दिन दिनके प्रथम भागमें और रात्रिके चतुर्थ भागमें गुलिक योग रहता है इसी प्रकार अन्यवचन ही है। "तथा च रविवारादौ दिनेगुलिकसंस्थितिः। सप्तर्तुशरवेदत्रिद्विकुखण्डेषु हि क्रमात् ॥ रात्रौ त्रिद्विकुसप्तर्तुपञ्चतुर्येषु तत्स्थितिः।" अर्थ-रविवारादिक वारोंके विषे दिनमें क्रमसे सप्तम, षष्ठ, पञ्चम, चतुर्थ, तृतीय; द्वितीय, प्रथम इन भागोंमें गुलिक योग रहता है और रात्रिमें तृतीय, द्वितीय, प्रथम, सप्तम, षष्ठ, पञ्चम, चतुर्थ इन भागोंमें-

चन्द्रदृष्टौ चोराऽपहृतधनश्चौरो वा ॥ ३० ॥

यदि गुलिकसहित आत्मकारकके नवांशपर चन्द्रमाकी दृष्टि होवे तौ चोरोंकर चुराये हुए धनवाला वा स्वयं चोर होता है ॥ ३० ॥

बुधमात्रदृष्टे बृहद्बीजः ॥ ३१ ॥

यदि गुलिकसहित आत्मकारकका नवांश केवल बुधहीने देखा हो और अन्य ग्रहकी दृष्टि न होवे तौ बडे२वृषणोंवाला होता है ॥३१॥

तत्र केतौ पापदृष्टे कर्णच्छेदः कर्णरोगो वा ॥३२॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें पापग्रहोंकर देखा हुआ केतु स्थित होवे तौ कर्णच्छेद अथवा कर्णरोग होता है ॥ ३२ ॥

शुक्रदृष्टे दीक्षितः ॥ ३३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ केतु शुक्रने देखा होवे तो किसी एक यज्ञक्रिया करके दीक्षित होता है ॥ ३३ ॥

बुधशनिदृष्टे निर्वीर्यः ॥ ३४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ केतु, बुध और शनैश्चर दोनोंने देखा होवे तो नपुंसक होता है ॥ ३४ ॥

बुधशुक्रदृष्टे पौनःपुनिको दासीपुत्रो वा ॥ ३५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ केतु बुध और शुक्र दोनोंने देखा होवे तो वार २ कहे हुए वचनके कहनेवाला होता है अथवा दासीका पुत्र होता है ॥ ३५ ॥

शनिदृष्टे तपस्वी प्रेष्यो वा ॥ ३६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ केतु अन्यग्रह और शनैश्चरने देखा होवे तो तपस्वी अथवा दास होता है ॥ ३६ ॥

–गुलिकयोग रहता है। जिस समय गुलिकयोगका आरम्भ होवे उस समय जो लग्न विद्यमान हो उस लग्नका जो नवांश उस समय होवे वहही नवांश आत्मकारकका यदि होवे तो वह आत्मकारकका नवांश सगुलिक कहा जाता हैं ऐसा जानना ॥

शनिमात्रदृष्टे संन्यासाभासः ॥ ३७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ केतु अन्य ग्रहने तो देखा न होवे केवल शनैश्चरने देखा होवे तो कथनमात्र संन्यासी होता है। परिपूर्ण संन्यासी नहीं होता है ॥ ३७ ॥

तत्र रविशुक्रदृष्टे राजप्रेष्यः ॥ ३८ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश सूर्य और शुक्र दोनोंने देखा होवे तो राजाका सेवक होता है ॥ ३८ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशसे दशम नवांशका
विचार करते हैं—

रिःफे बुधे बुधदृष्टे वा मन्दवत् ॥ ३९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे दशम स्थानपर बुध स्थित होवे अथवा आत्मकारकके नवांशसे दशम स्थान बुधने देखा होवे तो "प्रसिद्धकर्माजीवः शनौ" इस सूत्रका कहा हुआ फल होता है अर्थात् लोकप्रसिद्ध कर्मसे जीविका करनेवाला होता है ॥ ३९ ॥

शुभदृष्टे स्थैर्यः ॥ ४० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे दशम स्थान बुधको त्यागके अन्य शुभ ग्रहोंने देखा होवे तो स्थिर स्वभाव होता है, चंचल नहीं होता है ॥ ४० ॥

रवौ गुरुमात्रदृष्टे गोपालः ॥ ४१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे दशम नवांशमें स्थित हुआ सूर्य केवल बृहस्पतिने देखा होवे और किसी ग्रहने न देखा होवे तो गौओंकी रक्षा करनेवाला होता है ॥ ४१ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशका
विचार करते हैं—

दारे चन्द्रशुक्रदृग्योगात्प्रासादः ॥ ४२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांससे चतुर्थ नवमांशपर चन्द्र शुक्र इन दोनोंकी दृष्टि अथवा योग होनेसे उत्तम उत्तम राजमन्दिरोंवाला होता है ॥ ४२ ॥

उच्चग्रहेऽपि ॥ ४३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ स्थानपर कोई उच्चका ग्रह स्थित होवे तोभी उत्तम २ राजमन्दिरोंवाला होता है ॥ ४३ ॥

राहुशनिभ्यां शिलागृहम् ॥४४॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ स्थानपर राहु शनैश्चर दोनोंकी स्थिति होवे तौ शिलाओंका रचा हुआ गृह होता है ॥ ५४ ॥

कुजकेतुभ्यामैष्टकम् ॥ ४५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवमांशपर मंगल केतु ये दोनों स्थित होवें तो ईंटोंका रचा हुआ गृह होता है ॥ ४५ ॥

गुरुणा दारवम् ॥ ४६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशपर बृहस्पतिकी स्थिति होवे तो काष्ठका रचा हुआ गृह होता है ॥ ४६ ॥

तार्णं रविणा ॥ ४७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशपर सूर्यकी स्थिति होवे तो तृणका रचा हुआ गृह होता है ॥ ४७ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशका विचार करते हैं-

समे शुभदृग्योगाद्धर्मनित्यः सत्यवादी गुरुभक्तश्च॥४८

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि अथवा योग होवे तो धर्मनिष्ठ और सत्य बोलनेवाला तथा गुरुजनोंका भक्त होता है ॥ ४८ ॥

अन्यथा पापैः ॥ ४९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशपर पापग्रहोंकी दृष्टि

तथा योग होवे तो धर्मसे विपरीत चलनेवाला तथा झूंठ बोलनेवाला तथा गुरुजनोंका भक्त नहीं होता है ॥ ४९ ॥

शनिराहुभ्यां गुरुद्रोहः ॥ ५० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशपर शनि राहु इन दोनों की दृष्टि अथवा योग होवे तो गुरुसे विरोध करनेवाला होता है ॥५०

गुरुरविभ्यां गुरावविश्वासः ॥ ५१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशपर बृहस्पति, सूर्य इन दोनोंकी दृष्टि अथवा योग होवे तो गुरुमें विश्वास नहीं होता है ॥५१॥

तत्र भृग्वङ्गारकवर्गे पारदारिकः ॥ ५२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशमें शुक्र वा मङ्गलका षड्वर्ग होवे तो परस्त्रीगामी होता है ॥ ५२ ॥

दृग्योगाभ्यामधिकाभ्यामामरणम् ॥ ५३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवमांशमें शुक्र वा मङ्गलका षड्वर्ग होवे और शुक्र व मंगलकी दृष्टि अथवा योग होवे तौ मरणपर्यन्त पर-स्त्रीसे गमन करनेवाला होता है ॥ ५३ ॥

केतुना प्रतिबन्धः ॥ ५४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशमें केतुकी दृष्टि अथवा योग होवै तौ मरणपर्यन्त परस्त्रीसे विमुख रहता है ॥ ५४ ॥

गुरुणा स्त्रैणः ॥ ५५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशमें बृहस्पतिकी दृष्टि अथवा योग होवे तो स्त्री के आधीन रहता है ॥ ५५ ॥

राहुणार्थनिवृत्तिः ॥ ५६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशमें राहुकी दृष्टि अथवा योग होवे तो परस्त्रीसंगसे धनका नाश होता है ॥ ५६ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशका विचार करते हैं—

लाभे चन्द्रगुरुभ्यां सुन्दरी ॥ ५७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें चन्द्र बृहस्पति इन दोनोंका योग होवे तौ स्त्री सुन्दरी होती है ॥ ५७ ॥

राहुणा विधवा ॥ ५८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें राहुका योग होवे तौ गृहमें विधवा स्त्री होती है ॥ ५८ ॥

शनिना वयोधिका रोगिणी तपस्विनी वा ॥ ५९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें शनैश्चरका योग होवे तौ आपसे अधिक अवस्थावाली अथवा रोगिणी वा तपस्विनी स्त्री होती है ॥ ५९ ॥

कुजेन विकलाङ्गी ॥ ६० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें सप्तम नवांशसे मंगलका योग होवे तौ दुर्लक्षण अंगवाली स्त्री होवे है ॥ ६० ॥

रविणा स्वकुले गुप्ता च ॥ ६१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें सूर्यका योग होवे तौ अपनी स्त्री मरणपर्यन्त अपने घरमें रक्षित रहती है और स्वातंत्र्यसे इधर उधर फिरनेवाली नहीं होती है और सूत्रमें जो कि चकारका ग्रहण है तिससे विकलांगी अर्थात् दुर्लक्षण अङ्गवालीभी होती है ॥ ६१ ॥

बुधेन कलावती ॥ ६२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशपर बुधका योग होवे तौ स्त्री गानेमें तथा बजानेमें बहुत निपुण होती है ॥ ६२ ॥

चापे चन्द्रेणानावृते देशे ॥ ६३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशपर चन्द्रमा होवे और पूर्व कहे हुए स्त्रीकारकयोग विद्यमान होवे तो अनाच्छादि

देशमें प्रथम स्त्रीका संग होता है अथवा आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें धनुराशि और चन्द्रमा स्थित होवे तो अनाच्छादित देशमें प्रथम स्त्रीसंग होता है ॥ ६३ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशसे तृतीय नवांशका विचार करते हैं-

कर्मणि पापे शूरः ॥ ६४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे तृतीय नवांशमें पाप ग्रह स्थित होवे तो शूर वीर होता है ॥ ६४ ॥

शुभे कातरः ॥ ६५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे तृतीय नवांशमें शुभग्रह होवे तो कातर नाम डरपनेवाला होता है ॥ ६५ ॥

मृत्युचिन्तयोः पापे कर्षकः ॥ ६६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे तृतीय और षष्ठ नवांश दोनोंमें पापग्रह होवें तो खेती करनेवाला होता है ॥ ६६ ॥

समे गुरौ विशेषेण ॥ ६७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवांशमें बृहस्पति होवे तो विशेष करके खेती करनेवाला होता है ॥ ६७ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशसे द्वादश नवांशका विचार करते हैं-

उच्चे शुभे शुभलोकः ॥ ६८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे द्वादशनवांशमें शुभ ग्रह होवे तौ शुभ लोककी प्राप्ति होवे है ॥ ६८ ॥

केतौ कैवल्यम् ॥ ६९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे द्वादश नवांशमें केतु होवे तो मोक्ष होता है अथवा आत्मकारकके नवांशमें शुभ ग्रह होवे तो मोक्ष होता है ॥ ६९ ॥

क्रियचापयोर्विशेषेण ॥ ७० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें मेषराशि अथवा धनुराशि होवे और शुभ ग्रहके साथ स्थित होवे तो विशेषकरके मोक्ष होता है अर्थात् सायुज्य मोक्ष होता है अथवा आत्मकारकके नवांशसे द्वादश नवांशमें मेष वा धनुराशि स्थित होवे और सातवें केतु स्थित होवे तो सायुज्य मोक्ष होता है[1] ॥ ७० ॥

पापैरन्यथा ॥ ७१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे द्वादश नवांशमें और आत्मकारकके नवांशमें पापग्रहोंका योग होवे तो न शुभ लोक होता है न मुक्ति होती है ॥ ७१ ॥

रविकेतुभ्यां शिवे भक्तः ॥ ७२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें सूर्य और केतु दोनों मिलकर स्थित होवें तो शिवका भक्त होता है ॥ ७२ ॥

चन्द्रेण गौर्याम् ॥ ७३ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश चन्द्रमाकरके युक्त होवे तो गौरीका भक्त होता है ॥ ७३ ॥

शुक्रेण लक्ष्म्याम् ॥ ७४ ॥

---

१ शुभ ग्रहकी अपेक्षासे केतु पापग्रह होनेसे केतु सायुज्य मुक्तिको देने वाला नहीं हो सकता इससे "केतौ कैवल्यम्, क्रियचापयोर्विशेषेण" इन सूत्रोंपर यह व्याख्या ही उचित है । आत्मकारकके नवांशमें शुभग्रह होवे तो मुक्ति होती है और आत्मकारकके नवांशमें मेष वा धनु राशि स्थित होवे और साथमें शुभग्रह होवे तो सायुज्यमुक्ति होवे है । सूत्रकारने केतुको शुभग्रह नहीं कहा है और जो कि "चरदशायामत्र शुभः केतुः" इस अगाड़ी कहे जानेवाले सूत्रमें केतुको शुभ करके कहा सो चरदशामें केतु शुभ है और जगह नहीं ऐसा अर्थ जानना ॥

२ "रविकेतुभ्यां शिवे भक्तः" इस सूत्रसे लेकर " अमात्यदासे चैवम्" इस सूत्रपर्यन्त "केतौ" इस पदकी अनुवृत्ति जाननी ॥

यदि आत्मकारकका नवांश शुक्रकरके युक्त होवे तो लक्ष्मीका भक्त होता है ॥ ७४ ॥

कुजेन स्कन्दे ॥ ७५ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश मंगलकरके युक्त होवे तो स्कन्द भगवान्‌का भक्त होता है ॥ ७५ ॥

बुधशनिभ्यां विष्णौ ॥ ७६ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश बुध शनैश्चर दोनोंसे युक्त होवे तो विष्णुका भक्त होता है ॥ ७६ ॥

गुरुणा साम्बशिवे ॥ ७७ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश बृहस्पति करके युक्त होवे तो पार्वतीसहित शिवका भक्त होता है ॥ ७७ ॥

राहुणा तामस्यां दुर्गायाम् ॥ ७८ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश राहुसे युक्त होवे तो तामसी देवता और दुर्गाका भक्त होता है ॥ ७८ ॥

केतुना गणेशे स्कन्दे च ॥ ७९ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश केतुसे युक्त होवे तो गणेश और स्कन्दका भक्त होता है ॥ ७९ ॥

पापर्क्षे मन्दे क्षुद्रदेवतासु ॥ ८० ॥

---

१ कोई आचार्य यह कहते हैं कि यदि यह अर्थ सम्मत होता तो "पापर्क्षे मन्दशुक्राऽमात्यदासेषु क्षुद्रदेवतासु" ऐसा सूत्र एक ही रचित होता फिर पृथक् पृथक् सूत्र रचना व्यर्थ है सो एक सूत्र नहीं हो सकता क्योंकि यदि इस प्रकार एक ही सूत्र होता तो यह अर्थ हो सकता। शनैश्चर शुक्र अमात्यदास यह ग्रह मिल करके आत्मकारकके नवांशमें पापराशिके विषे स्थित होवे तो क्षुद्रदेवताका भक्त होता है और जो कि शनैश्चर, शुक्र अमात्यदास इनमेंसे एक एककी पापराशिमें स्थिति करके क्षुद्रदेवताकी भक्ति होती है तिससे योगविभागके लिये पृथक् २ सूत्र रचना उचित ही है॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें पापराशि और शनैश्चरयुक्त होवे तो कर्णपिशाचादि देवताओंका भक्त होता है ॥ ८० ॥

शुक्रे च ॥ ८१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें पापराशि और शुक्र स्थित होवे तोभी कर्णपिशाचादि देवताओंका भक्त होता है ॥ ८१ ॥

अमात्यदासे चैवम् ॥ ८२ ॥

आत्मकारक ग्रहसे कम अंशकलादि वाला ग्रह अमात्यकारक होता है उस अमात्यकारक ग्रहसे जो कि क्रमसे गिननेसे छठा ग्रह है वह ग्रह अमात्यदास संज्ञक है। यदि अमात्यदाससंज्ञक ग्रह आत्मकारकके नवांशमें स्थित होवे और पापराशिभी उस आत्मकारकके नवांशमें विद्यमान होवे तोभी क्षुद्रदेवताओंका भक्त होवे ॥ ८२ ॥

त्रिकोणे पापद्वये मान्त्रिकः ॥ ८३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें पंचम और नवम नवांश इन दोनोंमें क्रमसे दो पापग्रह स्थित होवें तो मंत्रवेत्ता होता है ॥ ८३ ॥

पापदृष्टे निग्राहकः ॥ ८४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे जो कि पंचम और नवम नवांश हैं वे दोनों पापग्रहोंसे युक्त होवें और पापग्रहोंने देखे होवें तो भूतादिकोंका निग्रह करनेवाला होता है ॥ ८४ ॥

शुभदृष्टेऽनुग्राहकः ॥ ८५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे पंचम नवम ये दोनों पापग्रहोंसे युक्त होवें और शुभग्रहोंने देखे होवें तो लोकमें अनुग्रह करनेवाला होता है ॥ ८५ ॥

शुक्रेन्दौ शुक्रदृष्टे रसवादी ॥ ८६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ चन्द्रमा शुक्रने देखा होवे तो रसोंके बनानेवाला होता है ॥ ८६ ॥

बुधदृष्टे भिषक् ॥ ८७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ चन्द्रमा बुधने देखा होवे तो वैद्य होता है ॥ ८७ ॥

चापे चन्द्रे शुक्रदृष्टे पाण्डुश्वित्री ॥ ८८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें स्थित हुआ चंद्रमा शुक्रने देखा होवे तो श्वेतकुष्ठवाला होता है ॥ ८८ ॥

कुजदृष्टे महारोगः ॥ ८९ ॥

यदि आत्मकारकग्रहके नवांशसे चतुर्थनवांशमें स्थित हुआ चन्द्रमा शुक्रने देखा हो तो महारोग अर्थात् कुष्ठरोगी होता है ॥ ८९ ॥

केतुदृष्टे नीलकुष्ठम् ॥ ९० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें स्थित हुआ चन्द्रमा केतुकर देखा होवे तौ नीलकुष्ठरोगवाला होता है ॥ ९० ॥

तत्र मृतौ वा कुजराहुभ्यां क्षयः ॥ ९१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें अथवा पंचम नवांशमें मंगल राहु होवें तो क्षयरोगवाला होता है ॥ ९१ ॥

चन्द्रदृष्टौ निश्चयेन ॥ ९२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें अथवा पंचम नवांशमें स्थित हुए मंगल और राहुपर चन्द्रमाकी दृष्टि होवे तो बडा प्रबल क्षयरोग होता है ॥ ९२ ॥

कुजेन पिटिकादिः ॥ ९३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें अथवा पंचम नवांशमें मंगल स्थित होवे तौ पिटिकादिकरोग होते हैं ॥ ९३ ॥

केतुना ग्रहणी जलरोगो वा ॥ ९४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें अथवा पंचमनवांशमें केतु स्थित होवे तो संग्रहणी अथवा जलोदरादिक रोग होते हैं॥९४॥

राहुगुलिकाभ्यां क्षुद्रविषाणि ॥ ९५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें अथवा पंचम नवांशमें राहु और गुलिक होवे तौ मूषकाद विष होते हैं । भाव यह है कि गुलिकयोगके आरंभके लग्नका नवांश ही आत्मकारकके नवांशका चतुर्थ वा पंचम नवांश होवे और तहां राहु स्थित होवे तौ क्षुद्र जीव मूषिकादि विष होते हैं ॥ ९५ ॥

तत्र शनौ धानुष्कः ॥ ९६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें शनैश्चर स्थित होवे तौ धनुषविद्यामें निपुण होता है ॥ ९६ ॥

केतुना घटिकायन्त्री ॥ ९७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें केतु स्थित होवे तौ घटिकायंत्रको रखनेवाला होता है ॥ ९७ ॥

बुधेन परमहंसो लगुडी वा ॥ ९८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें बुध स्थित होवे तौ परमहंस अथवा दण्डी होता है ॥ ९८ ॥

राहुणा लोहयन्त्री ॥ ९९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें राहु स्थित होवे तौ लोहरचित यंत्र रखनेवाला होता है ॥ ९९ ॥

रविणा खड्गी ॥ १०० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें सूर्य स्थित होवे तौ तलवार रखनेवाला होता है ॥ १०० ॥

कुजेन कुन्ती ॥ १०१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें मंगल स्थित होवे तौ कुन्तशस्त्र रखनेवाला होता है ॥ १०१ ॥

मातापित्रोश्चन्द्रगुरुभ्यां ग्रन्थकृत् ॥ १०२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें चन्द्रमा और बृहस्पति ये दोनों स्थित होवें तो ग्रन्थ बनानेवाला होता है ॥ १०२ ॥

शुक्रेण किञ्चिदूनम् ॥ १०३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें चन्द्रसहित शुक्र स्थित होवे तो ग्रंथ बनानेमें कुछ कम शक्तिवाला होता है[1] ॥ १०३ ॥

बुधेन ततोऽपि ॥ १०४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें चंद्रसहित बुध स्थित होवे तो शुक्रकी अपेक्षा करके ग्रन्थ बनानेमें और भी कुछ कम शक्तिवाला होता है ॥ १०४ ॥

शुक्रेण कविर्वाग्मी काव्यज्ञश्च ॥ १०५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें केवल शुक्रही स्थित होवे तो कवि और कहनेमें अति चतुरवाणीवाला तथा काव्योंका जाननेवाला होता है ॥ १०५ ॥

---

१ शङ्का-सूत्रमें तो केवल शुक्रका ही ग्रहण है फिर साथमें चन्द्रमाका कैसे ग्रहण किया है ? समाधान-यहां पूर्व सूत्रसे चन्द्रमाकी अनुवृत्ति है केवल शुक्रका ही ग्रहण नहीं क्योंकि केवल शुक्रका फल अगाड़ी कहा जावेगा । यदि कहो कि "शुक्रेण किञ्चिदूनम्, शुक्रेण कविर्वाग्मी काव्यज्ञश्च" इन दोनों सूत्रोंका यह अर्थ करे कि ग्रन्थकार होनेमें कुछ न्यून और कवि वाग्मी और काव्यवेत्ता होता है सो यह भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि यदि ऐसा अर्थ होता है तौ "शुक्रेण किञ्चिदूनं कविर्वाग्मी काव्यज्ञश्च" ऐसा एक ही सूत्र होता सो है नहीं इस कारण इस सूत्रका चन्द्र इस पदकी अनुवृत्ति द्वारा अर्थ करना उचित है । यदि कहो कि समासके मध्यमें स्थित हुए पदोंके एक अंशकी अनुवृत्ति उचित नहीं है सो यह भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इस ग्रन्थमें इस प्रकारकी अनुवृत्ति करनेकी रीति है ॥

गुरुणा सर्वविद् ग्रन्थिकश्च ॥ १०६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें केवल बृहस्पति स्थित होवे तौ सर्वज्ञ तथा ग्रन्थकर्ता होता है ॥ १०६ ॥

न वाग्मी ॥ १०७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें बृहस्पति होवे तौ वक्ता नहीं होता है ॥ १०७ ॥

विशिष्यवैयाकरणो वेदवेदाङ्गविच्च ॥ १०८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें बृहस्पति होवे तौ विशेष करके व्याकरणशास्त्रका जाननेवाला तथा वेदवेदांगोंका जाननेवाला होता है ॥ १०८ ॥

सभाजडः शनिना ॥ १०९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें शनैश्चर स्थित होवे तौ सभाजड अर्थात् सभामें बोलनेवाला नहीं होता है ॥ १०९ ॥

बुधेन मीमांसकः ॥ ११० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें बुध स्थित होवे तौ मीमांसाशास्त्रका जाननेवाला होता है ॥ ११० ॥

कुजेन नैयायिकः ॥ १११ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पञ्चम नवांशमें मङ्गल स्थित होवे तौ न्यायशास्त्रका जाननेवाला होता है ॥ १११ ॥

चंद्रेण सांख्ययोगज्ञः साहित्यज्ञो गायकश्च ॥ ११२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पञ्चम नवांशमें चन्द्रमा स्थित होवे तौ सांख्ययोगका जाननेवाला तथा साहित्यका जाननेवाला और गान करनेमें निपुण होता है ॥ ११२ ॥

रविणा वेदान्तज्ञो गीतज्ञश्च ॥ ११३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पञ्चम नवांशमें सूर्य स्थित होवे तौ वेदान्तशास्त्रका जाननेवाला तथा गीतोंका जानने-वाला होता है ॥ ११३ ॥

केतुना गणितज्ञः ॥ ११४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पञ्चम नवांशमें केतु स्थित होवे तौ गणितका जाननेवाला होता है ॥ ११४ ॥

गुरुसंबन्धेन संप्रदायसिद्धिः ॥ ११५ ॥

यदि इन कहे हुए समस्तयोगोंके विषे बृहस्पतिकी दृष्टि और बृह-स्पतिका षड्वर्ग सम्बन्ध होवे तौ जिस २ शास्त्रके जाननेका जो २ योग है उस उस शास्त्रकी सम्प्रदायसिद्धि अर्थात् समस्त भेद जान-नेकी गति होती है। भाव यह है कि, जिस शास्त्रके जाननेका जो योग पाया जावे यदि उस योगपर बृहस्पतिकी दृष्टि अथवा षड्वर्ग संबन्ध होवे तौ उस शास्त्रके समस्त गम्भीर भावका जाननेवाला होता है ॥ ११५ ॥

भाग्ये चैवम् ॥ ११६ ॥

जिस प्रकार कि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पञ्चमांशमें पूर्व कहे हुए चन्द्र बृहस्पति आदिकोंके योग करके ग्रन्थकर्तृत्वादि फल विचारा जाता है तिसी प्रकार आत्मकारकके नवांशसे द्वितीय नवांशमें चंद्र बृहस्पति आदिकोंके योगसे ग्रन्थकर्तृत्वादि फल विचा-रना चाहिये ॥ ११६ ॥

सदा चैवमित्येके ॥ ११७ ॥

आत्मकारकके नवांशसे तृतीय नवांशमेंभी पूर्व कहे हुए चन्द्र बृहस्पति आदिक ग्रहोंके योग करके पूर्व कहा हुआ ग्रन्थकर्तृत्वादि फल विचारना चाहिये ऐसा कोई आचार्य कहते हैं ॥ ११७ ॥

भाग्ये केतौ पापदृष्टे स्तब्धवाक् ॥ ११८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे द्वितीय नवांशमें पापग्रहकर देखा हुआ केतु स्थित होवे तो कुछ रुक २ कर बोलनेवाला अथवा शीघ्र उत्तर देनेमें असमर्थ वाणीवाला होता है ॥ ११८ ॥

इसके अनन्तर केमद्रुमयोग कहते हैं-

स्वपितृपदाद्भाग्यरोगयोः पापे साम्ये केमद्रुमः ॥११९॥

अपने जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरूढ स्थानसे द्वितीय और अष्टमराशिपर केवल पापग्रह होवें अथवा इन्हीं स्थानोंपर पापग्रह और शुभग्रह समान संख्यावाले होवें तो केमद्रुमयोग होता है। भाव यह है कि अपने जन्मलग्नसे वा जन्मलग्नके आरूढ स्थानसे जो कि द्वितीय और अष्टमराशि है उन दोनोंपर जो केवल पापग्रह होवें तो केमद्रुमयोग होता है और इन कहे हुए स्थानों-पर एक २ पापग्रहके साथ एक २ शुभग्रह हो अथवा दो २ पाप-ग्रहोंके साथ एक २ शुभग्रह हो अथवा दो २ पापग्रहोंके साथ दो २ शुभग्रह होवें अर्थात् पापग्रह और शुभग्रह बराबर स्थित होवें तोभी केमद्रुमयोग होता है और जो न्यूनाधिक होवे तो केमद्रुम योग नहीं होते हैं[1] ॥ ११९ ॥

---

१ शङ्का-सूत्रमें जो कि स्वशब्द है तिससे आत्मकारकके नवांशका बोध हो सकता है सो कैसे नहीं कहा? समाधान-यदि स्वशब्द आत्मकारकके नवांशका बोधक होता तो 'पितृपदात' इस वाक्यसे ही आत्मकारकके नवांशका लाभ होनेपर फिर स्वशब्दका ग्रहण करना निरर्थक होता और जब कि स्वशब्द न होता तो 'पितृपदात्' इस पदसे यह अर्थ होता आत्मकारकके नवांशसे और आत्मकारकके नवांशके आरूढ स्थानसे सो यहां यह अर्थ अपेक्षित नहीं है यहां तो अपने जन्मलग्नसे और अपने जन्मलग्नके आरूढ स्थानसे ऐसा अर्थ अपेक्षित है क्योंकि ऐसे अर्थमें वृद्ध-वचन भी प्रमाण है "आरूढाजन्मलग्नाद्वा पापौ स्वीहानिगौ यदि । केवलौ संग्रहत्वेऽपि समसंख्यौ शुभाशुभौ । चन्द्रदृष्टौ विशेषेण योगः केमद्रुमो मतः ।" अर्थ-जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरूढ स्थानसे द्वितीय अष्टम-

चन्द्रदृष्टौ विशेषेण ॥ १२० ॥

यदि केमद्रुमयोग होनेपर जन्मलग्नसे अथवा आरूढ स्थानसे द्वितीय और अष्टम स्थानपर चंद्रमाकी दृष्टि होवे तो विशेष करके केमद्रुमनाम दारिद्र्ययोग होता है ॥ १२० ॥

ये पूर्व कहे हुए फल क्या सब कालमेंभी होते हैं अथवा किसी कालविशेषमें होते हैं ? इसका निर्णय कहते हैं-

सर्वेषां चैवं पाके ॥ १२१ ॥

समस्त राशियोंकी दशामें ये पूर्व कहे हुए फल होते हैं अथवा समस्त राशियोंके दशारम्भ कालमेंभी इस प्रकार केमद्रुमयोगका विचार करना चाहिये। केमद्रुमयोग होनेपर दशामें दारिद्र्य होता है ॥१२१॥

इति श्रीजैमिनीसूत्रप्रथमाध्याये श्रीनीलकण्ठीयतिलकानुसृतभाषाटीकायां श्रीपाठकमङ्गलसेनात्मजकाशिरामकृतायां द्वितीयपादः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयपादः।



इसके अनन्तर आरूढकुण्डलीस्थ ग्रहोंके आश्रय करके फलोंके कहनेको पदका अधिकार कहते हैं-

अथ पदम् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर आरूढका दूसरा नाम जो कि पद है उसका आधि-

-स्थानपर केवल पापग्रह होवें अथवा पापग्रह और शुभग्रह उक्त स्थानोंपर बराबर संख्यावाले होवें तौ केमद्रुम योग होता है और चन्द्रमाकर देखे गये होवें तौ विशेषकरके केमद्रुमयोग होता है और इस सूत्रकी व्याख्या स्वाम्यादिकोंने और इस प्रकार की है आत्मकारकके और अपने लग्नसे और आरूढ स्थानसे द्वितीय, अष्टम स्थानोंपर पापग्रह होवें अथवा पापग्रह और शुभग्रह बराबर संख्यावाले होकर स्थित होवें तो केमद्रुमयोग होता है। यह व्याख्या वृद्धसम्मत नहीं है।

कार इस प्रकरणमें कहते हैं । भाव यह है कि " यावदाश्रयं पदमृक्षाणाम् " इस सूत्रमें जो कि आरूढके दूसरे नाम पदका विवेचन किया है उस पदका अधिकार इस प्रकरणमें कहते हैं ॥ १ ॥

इसके अनन्तर लग्नारूढ एकादशस्थानका फल कहते हैं-

व्यये सग्रहे ग्रहदृष्टे श्रीमन्तः ॥ २ ॥

लग्नारूढ स्थानसे एकादशस्थान किसी ग्रहसे युक्त होकर किसी ग्रहकर देखा गया होवे तो लक्ष्मीवाले पुरुष होते हैं ॥ २ ॥

शुभैर्न्याय्यो लाभः ॥ ३ ॥

यदि लग्नारूढ स्थानसे एकादश स्थान शुभ ग्रहोंसे युक्त होकर शुभ ग्रहोंने देखा होवे तौ न्यायमार्गसे धनका लाभ होता है ॥ ३ ॥

पापैरमार्गेण ॥ ४ ॥

यदि लग्नारूढ स्थानसे एकादशस्थान पापग्रहोंसे युक्त होकर पापग्रहोंने देखा होवे तौ शास्त्रविरुद्ध मार्गसे धनका लाभ होता है ॥ ४ ॥

उच्चादिभिर्विशेषात् ॥ ५ ॥

उच्च और अपने ग्रहादिकोंपर स्थित हुए ग्रहोंके योग करके विशेष धनकी प्राप्ति होवे है । भाव यह है कि लग्नारूढस्थानसे एकादश स्थान उच्च स्वगृहादिस्थ शुभ ग्रहोंसे युक्त होकर उच्च स्वगृहादिस्थ शुभ ग्रहोंकर देखा होवे तौ न्यायमार्गसे विशेष धनकी प्राप्ति होवे है और लग्नारूढस्थानसे एकादश स्थान उच्च स्वगृहादिस्थ पाप ग्रहोंसे युक्त होकर उच्च स्वगृहादिस्थ पाप ग्रहोंकर देखा होवे तौ शास्त्रविरुद्धमार्गसे विशेष धनकी प्राप्ति होवे है[1] ॥ ५ ॥

---

१ यहांपर वृद्धवचन भी है "आरूढाल्लाभभवनं ग्रहः पश्येत्तु न व्ययम् । यस्य जन्मनि सोऽपि स्यात्प्रबलो धनवानपि । द्रष्टृग्रहाणां बाहुल्ये तदा द्रष्टरि भुङ्गे । सार्गले चापि तत्रापि बह्वर्गलसमागमे ॥ शुभग्रहार्गले तत्र तत्राप्युच्चग्रहार्गले । सुखानि स्वामिना दृष्टे लग्नभाग्याधिपेन वा ॥ जातस्य सुखः प्राबल्यं निर्दिशेदुत्तरोत्तरम् ।" अर्थ-लग्नारूढ स्थानसे ग्यारहवें स्थानको ग्रह देखता होवे और बारहवें स्थानको न देखता होवे तौ अत्यन्त धन-

इसके अनन्तर लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानका फल कहते हैं—

नीचे ग्रहदृग्योगाद्व्ययाधिक्यम् ॥ ६ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादशस्थानपर ग्रहोंकी दृष्टि और योग होवे तौ खर्चकी अधिकता रहती है। भाव यह है कि, लग्नारूढ स्थानसे द्वादशस्थान शुभग्रहयुक्त होकर शुभ ग्रहनेही देखा होवे तो सन्मार्गमें खर्च बहुत होता है और पापग्रहोंसे युक्त होकर पापग्रहोंनेही देखा होवे तौ असन्मार्गमें खर्च बहुत होता है ॥ ६ ॥

रविराहुशुक्रैर्नृपात् ॥ ७ ॥

लग्नारूढस्थानसे द्वादशस्थानपर सूर्य राहु शुक्र ये इकठे होकर अथवा एक २ ही स्थित होवे तौ राजद्वारमें खर्च होता है ॥ ७ ॥

चन्द्रदृष्टौ निश्चयेन ॥ ८ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानपर स्थित हुए सूर्य राहु शुक्रपर चन्द्रमाकी दृष्टि होवे तो निश्चय करके अवश्यही राजद्वारमें खर्च होता है और चन्द्रदृष्टि न होवे तौ राजद्वारके खर्चमें सन्देह रहता है ॥ ८ ॥

बुधेन ज्ञातिभ्यो विवादाद्वा ॥ ९ ॥

लग्नारूढस्थानसे द्वादशस्थानपर बुध स्थित होवे तौ जातिके निमित्त अथवा झगडेसे धनका खर्च होता है ॥ ९ ॥

-वान् होता है। यदि आरूढस्थानसे, एकादशस्थानके देखनेवाले बहुत ग्रह होवें तौ और भी अधिक धनवान् होता है और यदि देखनेवाला ग्रह उच्च होवे तौ और भी अधिक धनवान् होता है और यदि देखनेवाला ग्रह अर्गलासहित होवे तो और भी अधिक धनवान् होता है और यदि देखनेवाले ग्रहपर बहुत अर्गलाओंका समागम होवे तौ और भी अधिक धनवान् होता है और यदि शुभग्रहकी अर्गला होवे तौ और भी अधिक धनवान् होता है और यदि उच्चग्रहकी अर्गला होवे तो और भी अधिक धनवान् होता है और यदि स्वामी अथवा लग्न भाग्यनाथने देखा होवे तौ और भी अधिक धनवान् होता है परन्तु इन योगोंमें कोई ग्रह बारहवें स्थान को न देखता हो ॥

गुरुणा करमूलात् ॥ १० ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादशस्थानपर बृहस्पति स्थित होवे तौ किसी करके बहानेसे धनका खर्च होता है ॥ १० ॥

कुजशनिभ्यां भ्रातृमुखात् ॥ ११ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानपर मङ्गल और शनैश्चर दोनों स्थित होवें तौ भ्रातादिकोंके द्वारा धनका खर्च होता है ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर एकादशस्थानमें व्ययवत्‌ही लाभका विचार करते हैं–

एतैर्व्यय एवं लाभः ॥ १२ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादशस्थानपर स्थित हुए जिन ग्रहोंसे कि जिस प्रकार कि जिस मार्गद्वारा खर्च कहा है तिसी प्रकार एकादशस्थानपर स्थित हुए उन्हीं ग्रहोंसे उसी प्रकार करके उसी मार्गद्वारा लाभ भी होता है ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर लग्नारूढसे सप्तमस्थानका फल कहते हैं–

लाभे राहुकेतुभ्यामुदररोगः ॥ १३ ॥

लग्नारूढस्थानसे सप्तमस्थानपर राहु अथवा केतु स्थित होवे तौ उदरका रोग होता है ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर आरूढ स्थानसे द्वितीयस्थ केतुका फल कहते हैं–

तत्र केतुना झटिति ज्यानि लिङ्गानि ॥ १४ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वितीयस्थानमें केतुके योग करके शीघ्रही थोडी अवस्थामें बुढापेके चिह्न होते हैं[1] ॥ १४ ॥

---

१ "तत्र केतुना झटिति" इस सूत्रमें जो कि, तत्र-पद है तिसका अर्थ "लाभे" इस पदकी अनुवृत्तिसे "सप्तमे" ऐसा स्वाम्यादिकोंने किया है सो अनुचित है क्योंकि यदि ऐसा अर्थ होता तौ "केतुना झटिति ज्यानि लिंगानि" ऐसा सूत्र उचित होता फिर "तत्र" इस पदकी क्या आवश्यकता थी । दूसरे–"चन्द्रगुरुशुक्रेषु श्रीमन्तः" इस सूत्रसे अगार-

चन्द्रगुरुशुक्रेषु श्रीमन्तः ॥ १५ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वितीय स्थानमें चन्द्र बृहस्पति शुक्र ये समस्त अथवा एकही एक स्थित होवें तौ लक्ष्मीवाले होते हैं ॥ १५ ॥

उच्चेन वा ॥ १६ ॥

लग्नारूढस्थानसे द्वितियस्थानमें कोई उच्चका शुभ ग्रह अथवा उच्चका पाप ग्रह स्थित होवे तौ लक्ष्मीवाले होते हैं ॥ १६ ॥

स्वांशवदन्यत्प्रायेण ॥ १७ ॥

जिस प्रकार कि आत्मकारकके नवांशमें फल कहा है तिसी प्रकार बहुधा करके लग्नारूढस्थानसे फल जानना चाहिये । भाव यह है कि जिस २ प्रकार कि, आत्मकारकके नवांशसे जिस २ स्थानमें कि जो २ फल विचारा जाता है तिसी २ प्रकार लग्नारूढ स्थानसे उसी २ स्थानमें उसी २ फलका विचार कर्त्तव्य है[1] ॥ १७ ॥

लाभपदे केन्द्रे त्रिकोणे वा श्रीमन्तः ॥ १८ ॥

लग्नारूढ स्थानसे केन्द्र नाम प्रथम चतुर्थ सप्तम दशम स्थानमें अथवा त्रिकोण नाम पञ्चम नवम स्थानमें सप्तम भावका आरूढ राशि होवे तौ लक्ष्मीवाले होते हैं ॥ १८ ॥

-वक्तव्य होनेसे सप्तममें धनका विचार नहीं किया जाता है । धनका विचार तो द्वितीय स्थानमें ही किया जाता है इस कारण इस सूत्रमें 'तत्र' इस पदका प्रयोग है । द्वितीय स्थानमें धनका विचार वृद्धोंने भी कहा है । "आरूढात्षष्ठभे पापे चोरः स्याच्छुभवर्जिते । आरूढाद्वापि सौम्ये तु सर्वदिश्यधिपो भवेत ॥ सर्वज्ञस्तत्र जीवे स्यात्कविर्वादी च भार्गवे ।" अर्थ-आरूढ स्थानसे द्वितीय स्थानपर पापग्रह होवे और शुभ ग्रह वर्जित होवे तो चोर होता है और बुध होवे तो सर्व दिशामें राजा होता है । यदि बृहस्पति होवे तो सर्वज्ञ होता है और शुक्र होवे तो कवि और वादी होता है ॥

१ सूत्रमें जो कि "प्रायेण" ऐसा पद कहा है तिस करके सब जगह कारकांशवत फल नहीं विचारना चाहिये क्योंकि औपदेशिक शास्त्रके विरुद्ध आतिदेशिकशास्त्रकी प्रवृत्ति नहीं होती है ।

अन्यथा दुःस्थे ॥ १९ ॥

लग्नारूढस्थानसे दुःस्थ नाम षष्ठ अष्टम द्वादश स्थानपर सप्तमभावका आरूढ राशि स्थित होवे तौ लक्ष्मीवाले नहीं होते हैं किन्तु दरिद्री होते हैं ॥ १९ ॥

केन्द्रे त्रिकोणोपचयेषु द्वयोर्मैत्री ॥ २० ॥

लग्नारूढ स्थानसे केन्द्रमें अथवा त्रिकोणमें अथवा उपचय[1] नाम तृतीय दशम एकादशस्थानमें सप्तमभावका आरूढ राशि स्थित होवे तो दोनों भार्या और भर्त्तामें परस्पर मित्रता रहती है। इसी प्रकार लग्नारूढसे केंद्र त्रिकोण उपचय स्थानमें पुत्रादिभावका आरूढ राशि स्थित होवे तौ पुत्रादिकोंकी मित्रता विचारने योग्य है ॥ २० ॥

रिपुरोगचिन्तासु वैरम् ॥ २१ ॥

लग्नारूढस्थानसे रिपु नाम षष्ठ और रोग नाम अष्टम और चिंता नाम द्वादश इन स्थानोंपर जिस २ पुत्रादिभावका आरूढ राशि स्थित होवे तो उसी २ पुत्रादिसे वैर होता है। जैसे लग्नारूढ स्थानसे पुत्रभावका आरूढ राशि षष्ठ अष्टम द्वादश इन स्थानोंपर स्थित होवे तो पुत्र और पिताका परस्पर वैर होता है। तिसी प्रकार स्त्री माता पिता बान्धव आदिकोंका वैर विचारना चाहिये[2] ॥ २१ ॥

पत्नीलाभयोर्दृष्ट्या निराभासार्गलया ॥ २२ ॥

लग्नारूढ और सप्तमारूढ इन दोनोंकी अप्रतिबन्ध अर्गला होवे

---

१ यहां उपचयसंज्ञक स्थानोंके मध्यमें षष्ठस्थानका ग्रहण नहीं है क्योंकि षष्ठस्थानका फल "रिपुरोगचिन्तासु वैरम्" इस सूत्रमें कहा जावेगा ॥

२ "लाभपदे केन्द्रे" इससे लेकर "रिपुरोगचिन्तासु वैरम्" इस पर्यन्त जो कि विषय कहा है उसके पुष्ट करनेमें वृद्धवचन भी है । "लग्नारूढं दारपदं मिथः केन्द्रगतं यदि। त्रिलाभे वा त्रिकोणे वा तथा राजन्यथाऽधमः ॥ आरूढौ पुत्रपित्रोस्तु त्रिलाभकेन्द्रगौ यदि। द्वयोर्मैत्री त्रिकोणे तु साम्यं द्वेषोऽन्यथा भवेत् ॥ एवं दारादिभावानामपि पत्यादिमित्रता। जातकद्वयमालोक्य चिन्तनीयं विचक्षणैः ॥" इन तीनों श्लोकोंका अर्थ सुगम है ॥

तौ उसकरके भाग्यवान् होते हैं। भाव यह है कि लग्नारूढ राशि और सप्तम भावका आरूढ राशि इन दोनोंका अर्गलायोग होवे और उस अर्गलायोगका बाधकयोग न होवे तो भाग्यवान् होता है[1] ॥ २२ ॥

शुभार्गले धनसमृद्धिः ॥ २३ ॥

लग्नारूढ और सप्तमारूढ इन दोनोंकी अर्गला यदि शुभ ग्रहोंकरके होवे तो धनकी बहुत वृद्धि होवे है। इस कथनसे यह जनाया गया कि लग्नारूढ और सप्तमारूढ इन दोनोंकी अर्गला पाप ग्रहोंकरके होवे तो धनमात्र होता है और शुभ ग्रहोंकरके होवे तो धनकी विशेषता होवे है। पूर्वसूत्रमें शुभ पाप साधारणी बाधक योग वर्जित अर्गला करके धनादि होनेके लक्षणवाला भाग्ययोग कहा है और इस सूत्रमें शुभग्रहमात्र अर्गलाकरके धनकी वृद्धि और पापग्रहमात्र अर्गलासे धनकी यथावत् स्थिति और शुभ पापग्रह दोनोंकी अर्गला-करके किसी समय धनकी वृद्धि और किसी समय धनकी यथावत् स्थिति होती है ऐसा कहा है[2] ॥ २३ ॥

---

१ भाग्ययोगकी प्रबलतामें प्राचीनोंने कहा भी है। "यस्य पापः शुभो वापि ग्रहस्तिष्ठेच्छुभार्गले। तेन द्रष्टेक्षितं लग्नं प्राबल्यायोपकल्पते ॥ यदि पश्येद्ग्रहस्तन्न विपरीतार्गले स्थितः।" अर्थ–जिसके प्रतिबन्ध वर्जित अर्गला में शुभ ग्रह अथवा पाप ग्रह स्थित होवे और उसी ग्रहने आरूढ लग्न देखा होवे तौ भाग्ययोगकी प्रबलताके लिये कल्पित होता है और प्रतिबन्धयुक्त अर्गलाके ग्रह स्थित होवे तो भाग्यकी प्रबलताके लिये नहीं कल्पित होता है ॥

२ शंका–"शुभार्गले" इस सूत्रका अर्थ यह कैसे नहीं किया जा सकता है कि बाधकयोगवर्जित अर्गला होनेपर धनकी वृद्धि होती है ? समाधान–यदि ऐसा अर्थ किया जावेगा तो दोनों सूत्रोंमें एक ही अर्गला हुई और जब कि एक ही अर्गला हुई तौ पूर्व सूत्रसे यह सूत्र व्यर्थ हो सकता है इस कारण शुभशब्दसे शुभ ग्रहका भी ग्रहण है। यदि कहो कि भाग्ययोग और धन योगमें भेद है सो यह भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि धनके विना भाग्यसिद्धि नहीं हो सकती है ॥

जन्मकालघटिकास्वेकदृष्टासु राजानः ॥ २४ ॥

जन्मलग्न और होरालग्न और घटिकालग्न ये तीनों किसी एक ग्रह कर देखे होवें तो राजा होते हैं । भाव यह है कि, इन तीनोंको एक ग्रह देखता हो तो राजा होते हैं न कि एक दो लग्नके देखनेसे, यहां एक ग्रहकी दृष्टिविषयकी अपेक्षा है न कि एक ग्रहमात्रकी[1] ॥ २४ ॥

पत्नीलाभयोश्च राश्यंशकदृक्काणैर्वा ॥ २५ ॥

जन्मराशिकुण्डली, नवांशकुण्डली और द्रेष्काणकुण्डली इन तीनोंके विषे प्रथम और सप्तमस्थान इन दोनोंको एक ग्रह देखता होवे तौ राजा होते हैं । भाव यह है कि राशिकुण्डलीके प्रथम सप्तम स्थान और नवांशकुण्डलीके प्रथम सप्तम स्थान और द्रेष्काण कुण्डलीके प्रथम सप्तम स्थान ये छःओं स्थान एक ग्रहकर देखे जावें तो परिपूर्ण राजयोग होता है । यहां राशिशब्दसे चन्द्रराशि अपेक्षित है न कि लग्नराशि ॥ २५ ॥

तेष्वेकस्मिन्न्यूने न्यूनम् ॥ २६ ॥

जन्मलग्न होरालग्न और घटिकालग्न इनके विषे और राशिकुण्डली तथा नवांशकुण्डली और द्रेष्काणकुण्डली इनके विषे एकस्थान एक ग्रहकी दृष्टिसे न्यून होवे तौ न्यूनराजयोग होता है । भाव यह है कि जन्मलग्न होरालग्न घटिकालग्न इनमें दो लग्नको एक ग्रह देखता होवे तौ न्यूनराजयोग जानना और राशिकुण्डली द्रेष्काणकुण्डली और नवांशकुण्डली इनमें दो कुंडलीके सप्तमस्थानको एक ग्रह देखता होवे तौभी न्यूनराजयोग होता है[2] ॥ २६ ॥

---

१ घटिकालग्नके बनानेकी रीति वृद्धोंने कही है । "लग्नादेकघटीमात्रं याति लग्नं दिने दिने । परन्तु घटिकालग्नं निर्दिशेत्कालवित्तमः ॥" अर्थ—जन्मलग्नसे एक घटीमात्रमें घटिकालग्न व्यतीत होता है । इष्ट घटीको जन्मलग्नकी संख्यामें जोडकर १२ का भाग देनेसे जो बचे वही घटिकालग्न होता है ॥

२ इस कथनकी पुष्टतामें वृद्धवचन है । " विलग्नघटिकालग्नहोरालग्नानि पश्यति । उच्चगृहे राजयोगो लग्नद्वयमथापि वा ॥ राशेर्दृक्काणतोंऽशाच्च राशे-

एवमंशतो दृक्काणतश्च ॥ २७ ॥

जिस प्रकार कि जन्मकुण्डलीके साथ होरालग्न और घटिकालग्न इन दोनोंका ग्रहण है तिसी प्रकार नवांशकुण्डलीके साथ और द्रेष्काणकुण्डकीके साथ पृथक् २ होराकुण्डली और घटिकाकुण्डली इन दोनोंका ग्रहण है । भाव यह है कि जैसे कि जन्मलग्न होरालग्न घटिकालग्न ये तीनों एक ग्रहकरके देखे होवें तो राजयोग होता है । तिसी प्रकार नवांशलग्न होरालग्न घटिकालग्न ये तीनों एक ग्रहकरके देखे होवें तौ राज योग होता है और द्रेष्काणलग्न होरालग्न घटिकालग्न ये तीनों एक ग्रह करके देखे होवें तौभी राजयोग होता है ॥ २७ ॥

–रंशादथापि वा । यद्वा राशिदृक्काणाभ्यां लग्नद्रष्टा तु योगदः । प्रायेणायं जातकेषु प्रभूणामेव दृश्यते ॥" अर्थ–जन्मलग्न घटिकालग्न होरालग्न इन तीनोंको उच्चगृहमें स्थित हुआ ग्रह देखता हो अथवा इन तीनोंमेंसे दो हीको उच्चस्थ ग्रह देखता होवे तो राजयोग होता है । राशिलग्न द्रेष्काणलग्न नवांशलग्न इन तीनोंको उच्चग्रह देखता होवे अथवा इन तीनोंमें राशिलग्न और नवांशलग्न इन दोनोंको अथवा राशिलग्न और द्रेष्काणलग्न इन दोनोंको उच्चस्थग्रह देखता होवे तौ भी राजयोग होता है । राजयोगमें अन्य वाक्य भी है । "जन्मकालघटीलग्नेष्वेकेनैवेक्षितेषु तु । उच्चारूढे तु संप्राप्ते चन्द्राक्रान्ते विशेषतः ॥ क्रान्ते वा गुरुशुक्राभ्यां केनाप्युच्चग्रहेण वा। दुष्टार्गलग्रहाभावे राजयोगो न संशयः ॥" अर्थ–जन्मलग्न और होरालग्न और घटिकालग्न ये तीनों एक ही ग्रहने देखे हों और वह देखनेवाला ग्रह उच्चका हो अथवा चन्द्रमाके साथ होवे अथवा बृहस्पति शुक्र वा किसी उच्च ग्रहके साथ होवे दुष्टार्गल ग्रहका अभाव होवे तो राजयोग होता है इसमें संशय नहीं ।

१ अन्यराजयोग यहां ग्रन्थान्तरसे लिखते हैं । "निशार्द्धाच्च दिनार्द्धाच्च परं सार्द्धा द्विनाडिका । शुभात्तदुद्भवो राजा धनी वा तत्समोऽपि वा ॥" अर्थ–अर्द्धरात्रसे ऊपर और दोपहरसे ऊपर अढाई घटिका शुभ कही हैं उनमें उत्पन्न हुआ राजा धनी वा राजसमान होता है ॥

इसके अनन्तर यानयोगको कहते हैं-

शुक्रचन्द्रयोर्मिथोदृष्टयोः सिंहस्थयोर्वा यानवन्तः॥२८॥

यहां कहीं स्थित हुए शुक्र चन्द्रमा ये दोनों परस्पर देखे गये होवें तौ पुरुष सवारीवाला होता है अथवा शुक्र चन्द्रमा दोनोंमें एकसे दूसरा तृतीय स्थानपर स्थित होवे तोभी पुरुष सवारीवाला होता है। भाव यह है कि, कुण्डलीमें जिस किसी स्थानमें स्थित हुआ शुक्र चन्द्रमाको देखता हो और चन्द्रमा शुक्रको देखता हो तौ यानयोग होता है और शुक्रसे चन्द्रमा तृतीयस्थानपर स्थित होवे तौभी यानयोग होता है[1] ॥ २८ ॥

शुक्रकुजकेतुषु वैतानिकाः ॥ २९ ॥

यदि शुक्र मंगल केतु ये तीनों परस्पर एक दूसरेको देखते होवें अथवा परस्पर तृतीयस्थानपर स्थित होवें तौ वितानादि राजचिह्नवाले होते हैं। भाव यह है कि कुण्डलीमें शुक्र मंगल और केतुको और मङ्गल शुक्र और केतुको और केतु मंगल और शुक्रको देखता हो तौ वितानादि राजचिह्नवाले पुरुष होते हैं अथवा शुक्रसे मङ्गल केतु तृतीय स्थानपर स्थित हों अथवा मंगलसे शुक्र केतु तृतीयस्थानपर स्थित होवें अथवा केतुसे शुक्र मंगल तृतीयस्थानपर स्थित होवें तौभी वितानादि राजचिह्नवाले पुरुष होते हैं ॥ २९ ॥

स्वभाग्यदारमातृभावसमेषु शुभे राजानः ॥ ३० ॥

आत्मकारकग्रहसे जो कि द्वितीय चतुर्थ पञ्चमभावके राश्यादि हैं उनके समानही शुभ ग्रहोंके राश्यादि होवें तो राजा होते हैं। भाव यह है कि आत्मकारकग्रहका जो कि राश्यादि है उससे द्वितीयभावका जो कि राश्यादि है और चतुर्थभावका जो कि

---

१ इसमें वृद्धवचन भी प्रमाण है। "चन्द्रः कविं कविश्चन्द्रं पशत्यपि तृतीयगे। शुक्राच्चन्द्रे ततः शुक्रे तृतीये वाहनार्थवान् ॥" इसका अर्थ सुगम है ॥

राश्यादि है और पञ्चमभावका जो कि राश्यादि है इन तीनोंके समान शुभ ग्रहोंके राश्यादि होवें तो राजा होते हैं इसी प्रकार पुत्रादिकारकवशसे पुत्रादिकोंका फल विचारना चाहिये । यदि पुत्रादिकारकोंके विषेभी राजयोगबल होवे तौ पुत्रादिकाभी राजयोग कहना चाहिये ॥ ३० ॥

कर्मदासयोः पापयोश्च ॥ ३१ ॥

यदि आत्मकारकग्रहसे जो तृतीयभावका राश्यादि है और जो कि छठे भावका राश्यादि है इन दोनोंके समान दो पाप ग्रहोंके राश्यादि होवें तौभी राजा होते हैं ॥ ३१ ॥

पितृलाभाधिपाच्चैवम् ॥ ३२ ॥

लग्नेशसे और सप्तमेशसे द्वितीय चतुर्थ पञ्चमभाव इन तीनोंकें राश्यादिके समान शुभ ग्रहोंके राश्यादि होवें और लग्नेशसे और सप्तमेशसे तृतीय षष्ठ इन दोनों भावोंके राश्यादिके समान दो पाप ग्रहोंके राश्यादि होवें तौ राजा होते हैं[1] ॥ ३२ ॥

मिश्रे समः ॥ ३३ ॥

लग्नेशसे और सप्तमेशसे द्वितीय चतुर्थ पञ्चम इन भावोंके विषे शुभ ग्रह तथा पापग्रह दोनों होवें और तृतीय भाव और षष्ठ भावमेंभी पापग्रह दोनों होवें तौ राजाके समान होते हैं ॥ ३३ ॥

दरिद्रा विपरीते ॥ ३४ ॥

यदि पूर्वोक्त स्थानोंके मध्यम शुभ स्थानोंके विषे पापग्रह और पापस्थानोंके विषे शुभ ग्रह होवें तौ दरिद्री होते हैं ॥ ३४ ॥

मातरि गुरौ शुक्र चन्द्रेवा राजकीयाः ॥ ३५ ॥

---

१ शंका–इस पादमें तो आरूढस्थानका अधिकार है इससे पितृशब्दसे आरूढस्थान कैसे नहीं ग्रहण किया ? समाधान–"जन्मकाल" इस सूत्रसे सूत्रकारने कहीं कारक और कहीं जन्मकालका ग्रहण किया है । दूसरे इस ग्रन्थमें बहुधाकरके पितृशब्दसे जन्मलग्नका ही ग्रहण किया है ॥

यदि लग्नेशसे और सप्तमेशसे पञ्चमस्थानके विषे बृहस्पति अथवा शुक्र वा चन्द्रमा स्थित होवे तो राजकार्यके अधिकारवाला होता है ॥ ३५ ॥

कर्मणि दासे वा पापे सेनान्यः ॥ ३६ ॥

लग्नेशसे और सप्तमेशसे तृतीय अथवा षष्ठ भावमें पाप ग्रह होवे तो सेनापति होते हैं ॥ ३६ ॥

स्वपितृभ्यां कर्मदासस्थदृष्ट्या तदीशदृष्ट्या मातृनाथदृष्ट्या च धीमन्तः ॥ ३७ ॥

आत्मकारकसे और लग्नसे तृतीय और षष्ठस्थानमें स्थित हुए ग्रहकी आत्मकारक और लग्नपर दृष्टि होवे अथवा आत्मकारकसे और लग्नसे तृतीयस्थानका स्वामी और षष्ठ स्थानका स्वामी आत्मकारक और लग्नको देखता हो अथवा पंचमस्थानका स्वामी आत्मकारक और लग्नको देखता होवे तो बुद्धिमान् होते हैं ॥ ३७ ॥

दारेशदृष्ट्या च सुखिनः ॥ ३८ ॥

आत्मकारकसे और लग्नसे चतुर्थस्थानके स्वामीकी दृष्टि आत्मकारक और लग्नपर होवे तौ सुखी होते हैं ॥ ३८ ॥

रोगेशदृष्ट्या दरिद्राः ॥ ३९ ॥

आत्मकारक अथवा लग्नसे अष्टमस्थानके स्वामीकी आत्मकारक और लग्नपर दृष्टि होवे तौ दरिद्री होते हैं ॥ ३९ ॥

रिपुनाथदृष्ट्या व्ययशीलाः ॥ ४० ॥

आत्मकारक और लग्नसे द्वादशस्थानके स्वामीकी दृष्टि आत्मकारक और लग्नपर होवे तौ खर्चीले स्वभाववाला होता है ॥ ४० ॥

स्वामिदृष्ट्या प्रबलाः ॥ ४१ ॥

लग्नपर लग्नेशकी दृष्टि होवे और आत्मकारकपर आत्मकाराश्रित राशिके स्वामीकी दृष्टि होवे तौ बलवान् होते हैं ॥ ४१ ॥

इसके अनन्तर आपद्योग कहते हैं-

पश्चाद्रिपुभाग्ययोर्ग्रहसाम्यं बन्धः कोणयो रिपु-जाययोः कीटयुग्मयोर्दारारिःफयोश्च ॥ ४२ ॥

लग्नसे द्वितीय और द्वादश स्थानमें, पञ्चम और नवम स्थानमें, द्वादश और षष्ठ स्थानमें, चतुर्थ और दशमस्थानमें ग्रहोंकी तुल्यता होवे अर्थात् एक होवे तौ एक और दो होवे तौ दो और तीन होवें तौ तीन इस रीति ग्रह बराबर स्थित होवें तो कारागृहमें बन्धन होता है। भाव यह है कि जो द्वितीयस्थानपपर एक ग्रह होवे और द्वादशस्थानमेंभी एक ग्रह होवे और जो दो वा तीन ग्रह द्वितीय-स्थानमें होवें और द्वादशस्थानमेंभी दो वा तीन ग्रह स्थित होवें इसी प्रकार पञ्चम और नवम इन दोनोंमें ग्रह बराबर स्थित हों और द्वादश और षष्ठ इन दोनोंमें ग्रह बराबर स्थित हों और चतुर्थ और दशम इन दोनोंमें ग्रह बराबर स्थित होवें तौ कारागृ-हमें बन्धन होता है। यदि इन स्थानोंपर शुभ ग्रह स्थित हों अथवा शुभ ग्रह देखते हों, अथवा इन स्थानोंके स्वामियोंके साथ शुभग्रह होवें अथवा स्वामियोंको शुभग्रह देखते होवें तौ विना बेडी बन्धनके कारागृहमें नाममात्रका बन्धन होता है और यदि इन स्थानोंपर पापग्रह स्थित होवें अथवा पापग्रह देखते हों अथवा इन स्थानोंके स्वामियोंके साथ पापग्रहोंका संबन्ध होवे तौ बेडी आदिकोंसे बन्धन होकर कारागृहमें निवास होता है ॥ ४२ ॥

इसके अनन्तर नेत्रभंगयोग कहते हैं-

शुक्राद्गौणपदस्थो राहुः सूर्यदृष्टो नेत्रहा ॥ ४३ ॥

लग्नसे पञ्चम राशिके आरूढस्थानमें स्थित हुआ राहु सूर्यने देखा होवे तौ नेत्रोंके नाशकर्त्ता होता है ॥ ४३ ॥

स्वदारगयोःशुक्रचन्द्रयोरातोद्यं राजचिह्नानिच॥४४॥

आत्मकारकके स्थानसे चतुर्थस्थानपर शुक्र चन्द्र दोनों विद्यमान होवें तौ आतोद्यनाम बाजे और राजचिह्न पताकादिकके धारण करनेवाले होते हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रप्रथमाध्याये नीलकंठतिलकानुसृतभाषाटीकायां श्रीपाठकमंगलसेनात्मजकाशिरामकृतायां तृतीयःपादःसमाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थपादः ।

इसके अनन्तर उपपदादिके आश्रयसे बल कहते हैं ।

प्रथम उपपदको दिखाते हैं-

उपपदं पदं पित्रनुचरात् ॥ १ ॥

लग्नसे जो कि द्वादश राशि है उसका जो कि आरूढस्थान है वह उपपदसंज्ञक है[1] ॥ १ ॥

तत्र पापस्य पापयोगे प्रव्रज्या दारनाशो वा ॥ २ ॥

उपपदसे जो कि तत्र नाम द्वितीयस्थान है उसमें पापग्रहकी राशि विद्यमान होवे और पापग्रह उसमें स्थित होवे तो संन्यास होता है अथवा स्त्रीका नाश होता है[2] ॥ २ ॥

---

१ शंका-पित्रनुचरपदसे द्वादश स्थानका ज्ञान कैसे हुआ ? समाधान-पितृलग्न है अनुचर द्वितीय जिसका इस व्युत्पत्तिसे द्वादशस्थानका ज्ञान होता है और "पित्रनुचरात्" इस पाठको ही स्वीकार करके इस पदके अक्षरोंकी संख्या पिण्डसे सप्तसंख्याके लाभकर "सप्तमास्पदमुपपदम्" ऐसी व्याख्या जो कि कोई आचार्योंने की है सो अयुक्त है । यदि यह व्याख्या युक्त मानी जावे तो थोड़ा होनेसे "उपपदं पदं लाभात्" ऐसा सूत्र रचित होता ॥

२ शंका-जिस प्रकार कारकाधिकार और पदाधिकार इन दोनोंमें "तत्र" इस पदसे "कारकेपदे" ऐसा अर्थ होता है तिसी प्रकार इस प्रकरणमें "तत्र" इस पदसे "उपपदे" ऐसा अर्थ कैसे नहीं किया ? समाधान--यह-

उपपदस्याप्यारूढत्वादेव नात्र रविः पापः ॥३॥

इस विषयमें सूर्य पापग्रहसंज्ञक नहीं होता है किंतु शुभग्रहसंज्ञक होताहै। इस कथनसे यह जनाया गया कि उपपदसे द्वितीय स्थानमें सिंहराशिपर अथवा मेषादि पापग्रहोंके राशिपर विराजमान होकर सूर्य स्थित होवे तो संन्यास अथवा स्त्रीनाश नहीं होता है ॥ ३ ॥

शुभदृग्योगान्न ॥ ४ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानपर शुभग्रहकी दृष्टि अथवा योग होवे तो पूर्वोक्त योगके होनेपरभी यह फल नहीं है। भाव यह है कि उपपदसे द्वितीय स्थानमें पाप ग्रहके राशिपर स्थित होकर पापग्रहयुक्त होवे और उपपदसे द्वितीय स्थानपर शुभ ग्रहकीभी दृष्टि अथवा योग होवे तो संन्यास अथवा स्त्रीनाश नहीं होता है ॥ ४ ॥

नीचे दारनाशः ॥ ५ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें नीचग्रह स्थित होवे अथवा नीचग्रहका नवांश स्थित होवे तो स्त्रीका नाश होता है ॥ ५ ॥

-कथन सत्य है परन्तु यहां "तत्र" यह पद अधिकारमें स्थित नहीं इस कारण "तत्र" इस पदसे द्विसंख्याके लाभसे "उपपदं द्वितीये" ऐसा अर्थ कहा है। दूसरे ऐसा अर्थ अनुभवसिद्ध है, क्योंकि, इसमें वृद्धवचन है "आरूढात्षष्ठमे पापे चोरः स्याच्छुभवर्जिते। आरूढाद्वापि सौम्ये तु सर्वदिश्यधिपो भवेत ॥ सर्वज्ञस्तत्र जीवे स्यात्कविर्वादे च भार्गवे ॥" अर्थ-आरूढनाम उपपदसे द्वितीय स्थानमें शुभवर्जित पाप ग्रह होवें तौ चोर होता है बुध होवे तो सब दिशामें अधिप और बृहस्पति होवे तो सर्वज्ञ और शुक्र होवे तो कवि होता है ॥ शंका-आरूढ शब्दसे उपपदका अर्थ कैसे ग्रहण करते हो? आरूढका ही ग्रहण करना चाहिये। समाधान-आरूढपदसे आरूढाधिकारमें ही आरूढका ग्रहण है और यहां आरूढपदसे आरूढका ग्रहण नहीं, उपपदका ही ग्रहण है ॥

उच्चे बहुदारः ॥ ६ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें उच्चग्रह स्थित होवे अथवा उच्चग्रहका नवांश स्थित होवे तो बहुत स्त्रियोंवाला होता है ॥ ६ ॥

युग्मे च ॥ ७ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें मिथुनराशि होवे तोभी बहुत स्त्रियोंवाला होता है ॥ ७ ॥

तत्र स्वामीयुक्ते स्वर्क्षे वा तद्धेतावुत्तरायुषि निर्दारः॥८॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें स्वामीसे युक्त होवे अथवा उपपदके द्वितीय स्थानका स्वामी अपनेही राशिमें स्थित होवे तो उत्तर अवस्थामें स्त्रीवर्जित हो जाता है अर्थात् वृद्धावस्थामें स्त्रीका नाश हो जाता है ॥ ८ ॥

उच्चे तस्मिन्नुत्तमकुलाद्दारलाभः ॥ ९ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी यदि उच्च राशिमें स्थित होवे तो उत्तम कुलसे स्त्रीका लाभ होता है ॥ ९ ॥

नीचे विपर्ययः ॥ १० ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानका स्वामी यदि उच्च राशिमें स्थित होवे तो नीच कुलसे स्त्रीका लाभ होता है ॥ १० ॥

शुभसम्बन्धात् सुन्दरी ॥ ११ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें शुभग्रहका षड्वर्ग वा शुभग्रहकी दृष्टि अथवा शुभग्रहका योग होवे तो स्त्री सुन्दरी होती है ॥ ११ ॥

---

१ शंका-स्वाम्यादिकोंने तो तत्शब्दसे दारकारकका ग्रहण किया है फिर ऐसा अर्थ कैसे किया है ? समाधान-जब कि आदिमें दारकारकका ग्रहण नहीं फिर तत्शब्दसे दारकारकका ग्रहण करना अनुचित है। शंका-चन्द्र सूर्य इन दोनोंका तो एक ही एक राशि है उसके विषे "स्वर्क्षे तद्धेतौ" इस अंशका सम्भव नहीं हो सकता। समाधान-मत होवो चन्द्र सूर्यमें, इसमें हमारी क्या हानि है। शेष ग्रहोंमें तो होवे है ॥

राहुशनिभ्यामपवादात्त्यागो नाशो वा ॥ १२ ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानमें राहु और शनैश्चर दोनोंका योग होवे तो लोकनिंदासे स्त्रीका त्याग अथवा नाश होता है ॥ १२ ॥

शुक्रकेतुभ्यां रक्तप्रदरः ॥ १३ ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानमें शुक्र और केतु इन दोनोंका योग होवे तो रक्तप्रदर रोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १३ ॥

अस्थिस्रावो बुधकेतुभ्याम् ॥ १४ ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानमें बुध और केतु इन दोनोंका योग होवे तो अस्थिस्रावरोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १४ ॥

शनिरविराहुभिर्[1]रस्थिज्वरः ॥ १५ ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानमें शनैश्चर सूर्य राहु इन तीनोंका योग होवे तो अस्थिज्वरवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १५ ॥

बुधकेतुभ्यां स्थौल्यम् ॥ १६ ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानमें बुध और केतु इन दोनोंका योग होवे तो स्थूल स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १६ ॥

बुधक्षेत्रे मन्दाराभ्यां नासिकारोगः ॥ १७ ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानमें बुधकी राशि स्थित होवे और शनैश्चर मंगल दोनोंका योग होवे तो नासिकारोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवेहै १७

कुजक्षेत्रे वा ॥ १८ ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानमें मंगलकी राशि स्थित होवे और शनैश्चर मंगल इन दोनोंका योग होवे तो भी नासिकारोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १८ ॥

गुरुशनिभ्यां कर्णरोगो नरहका च ॥ १९ ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानमें बुधकी राशि अथवा मंगलकी राशि स्थित

---

१ रस्थिरज्वरः । इत्यपि दृश्यते ।

होवे और बृहस्पति शनैश्चर इन दोनोंका योग होवे तो कर्णरोगवाली और नाडिकानिस्सरण रोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १९ ॥

गुरुराहुभ्यां दन्तरोगः ॥ २० ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानमें बुधकी राशि अथवा मङ्गलकी राशि होवे और बृहस्पति राहु इन दोनोंका योग होवे तौ दन्तरोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ २० ॥

शनिराहुभ्यां कन्यातुलयोः पंगुर्वातरोगो वा ॥ २१ ॥

उपपदसे द्वितीयस्थानमें कन्या अथवा तुलाराशि होवे और शनैश्चर राहु इन दोनोंका योग होवे तो पंगुली अथवा वातरोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ २१ ॥

शुभदृग्योगान्न ॥ २२ ॥

यदि उपपदसे द्वितीयस्थानमें शुभ ग्रहकी दृष्टि अथवा योग होवे तो यह पूर्व कहे हुए दोष स्त्रीमें नहीं होते हैं ॥ २२ ॥

सप्तमांशग्रहेभ्यश्चैवम् ॥ २३ ॥

उपपदसे जो कि सप्तमभाव है उससे और सप्तमभावमें स्थित जो नवांश है उससे और सप्तमभावका जो कि स्वामी है उससे और सप्तमस्थ नवांशका जो कि स्वामी है उससे जो कि द्वितीयस्थान है उसमें भी यह पूर्व कहे हुए फल विचारने चाहिये जो कि उपपदसे द्वितीयस्थानमें विचारे गये हैं[1] ॥ २३ ॥

बुधशनिशुक्रे चानपत्यः ॥ २४ ॥

उपपदसे जो कि सप्तमस्थान है और जो कि सप्तमभावस्थ नवांश है और जो कि सप्तम भावका स्वामी है और जो कि सप्तमभावस्थ नवांशका स्वामी है इनके विषे बुध, शनैश्चर, शुक्र इन तीनोंका योग होवे तौ पुरुष सन्तानहीन होता है ॥ २४ ॥

पुत्रेषु रविराहुगुरुभिर्बहुपुत्रः ॥ २५ ॥

---

१ इसमें वृद्धवचन प्रमाण है–" सप्तमेशाद्द्वितीयस्थेष्वेवं फलमुदाहृतम्"

उपपदसे सप्तमस्थानसे और सप्तमस्थ नवांशसे और सप्तम भावके स्वामीसे और सप्तमस्थ नवांशके स्वामीसे जो कि पञ्चमस्थान है उनमें यदि सूर्य राहु बृहस्पति इन तीनोंका योग होवे तो बहुत पुत्रोंवाला होता है ॥ २५ ॥

चन्द्रेणैकपुत्रः ॥ २६ ॥

उपपदसे जो कि सप्तमस्थान है और जो कि सप्तमस्थ नवांश है और जो कि सप्तम भावका स्वामी है और जो कि सप्तमस्थ नवांशका स्वामी है इन सबसे जो कि पंचमस्थान है उनमें यदि चन्द्रमा स्थित होवे तौ एक पुत्रवाला होता है ॥ २६ ॥

मित्रे विलंबात्पुत्रः ॥ २७ ॥

उपपदसे जो कि सप्तमस्थान और सप्तमस्थ नवांश और सप्तम-भावस्वामी और सप्तमस्थ नवांशस्वामी है इनसे पञ्चमस्थानोंमें सन्तान-हानिकर्त्ता तथा बहुसन्तानदायक इन दोनों प्रकारके ग्रहोंका योग होवे तौ विलम्बसे पुत्रलाभ होता है ॥ २७ ॥

कुजशनिभ्यां दत्तपुत्रः ॥ २८ ॥

उपपदके सप्तमस्थानसे सप्तमस्थ नवांशसे और इन दोनोंके स्वामि-योंसे पंचमस्थानोंमें मंगल और शनैश्चर ये दोनों स्थित होवें तौ दत्त-पुत्रका लाभ होता है ॥ २८ ॥

ओजे बहुपुत्रः ॥ २९ ॥

उपपदसे सप्तमस्थानसे तथा सप्तमस्थ नवांशसे और इन दोनोंके स्वामियोंसे पञ्चमस्थानोंमें विषम राशि होवे तौ बहुत पुत्रवाले होते हैं ॥ २९ ॥

युग्मेऽल्पप्रजः ॥ ३० ॥

उपपदके सप्तमस्थानसे तथा सप्तमस्थ नवांशसे और इनदोनोंके स्वामियोंसे पंचम स्थानोंमें समराशि होवे तौ अल्पपुत्रवाले होते हैं ३०

गृहक्रमात्कुक्षितदीशपंचमांशग्रहेभ्यश्चैवम् ॥ ३१ ॥

जिस प्रकार कि जन्मलग्नसे क्रमसे भावोंका विचार किया जाता है तिसी प्रकार कुक्षि नाम उपपद और उपपदके स्वामी इत्यादिकोंसे भी विचार करे। कुक्षि नाम उपपद और तदीश नाम उपपदस्वामी इन दोनोंसे जो कि पंचमस्थान है और जो कि पंचमस्थ नवांश है और जो कि पञ्चमस्थानस्वामी है और जो कि पञ्चमस्थ नवांशस्वामी है इन सबसे भी पूर्वोक्त फलका विचार करना चाहिये ॥ ३१ ॥

भ्रातृभ्यां शनिराहुभ्यां भ्रातृनाशः ॥ ३२ ॥

उपपदसे और उपपदस्वामीसे भ्रातृ नाम तृतीय एकादश स्थानमें शनैश्चर राहु ये दोनों स्थित होवें तौ भ्राताका नाश होता है। भाव यह है कि उपपदसे अथवा उपपदके स्वामीसे तृतीय स्थानपर शनैश्चर राहु ये दोनों स्थित होवें तौ छोटे भ्राताका नाश होता है और एकादशस्थानपर शनैश्चर राहु ये दोनों स्थित होवें तौ बडे भ्राताका नाश होता है[२] ॥ ३२ ॥

शुक्रेण व्यवहिते गर्भनाशः ॥ ३३ ॥

उपपदसे और उपपदके स्वामीसे एकादश अथवा तृतीयस्थानमें

---

१ कुक्षिपदसे प्रकरणपठित उपपदका ही ग्रहण होता है। स्वाम्यादिकोंने "कुक्षितदीशौ" इसका अर्थ-"सिंहरवी" ऐसा कहा है सो सर्वसाधारण होनेसे योग्य नहीं क्योंकि विशेषकर इस शास्त्रमें अक्षरोंसे सिद्ध किये हुए अंकोंका ही ग्रहण किया गया है। "भ्रातृभ्यां शनि०" इत्यादि सूत्रोंमें उपपद और उपपदस्वामीसे विचार करना चाहिये क्योंकि जहां जिसका सम्भव होता है उसीकी अनुवृत्ति अगले सूत्रमें की जाती है।

२ शंका-उपपदसे और उपपद स्वामीसे ऐसा अर्थ यहां कहांसे लिया ? समाधान-"गृहक्रमात" इस सूत्रमें कुक्षि और तदीश ये दो पद हैं तिनसे ऐसा अर्थ ग्रहण किया है। यदि कहो कि समासपतित पदोंके एक अंशकी अनुवृत्ति नहीं हो सकती है सो यह भी कथन अनुचित है क्योंकि अन्यपदोंसे भ्रातृविचार अयोग्य है इससे एक अंशकी अनुवृत्ति की गई है।

शुक्र स्थित होवे तौ माताके पहिले और पिछले गर्भका नाश होता है ॥ ३३ ॥

पितृभावे शुक्रदृष्टेऽपि ॥ ३४ ॥

लग्न अथवा लग्नसे अष्टमस्थान शुक्रकर देखा गया हो तब भी माताके पूर्व और पिछले गर्भका नाश होता है ॥ ३४ ॥

कुजगुरुचन्द्रबुधैर्बहुभ्रातरः ॥ ३५ ॥

उपपदसे और उपपदस्वामीसे तृतीय अथवा एकादशस्थानमें मंगल,बृहस्पति,चंद्र ये स्थित होवें तो बहुत भ्राता होते हैं ॥ ३५ ॥

शन्याराभ्यां दृष्टे यथा स्वभ्रातृनाशः ॥ ३६ ॥

उपपदसे और उपपदस्वामीसे तृतीय और एकादशस्थान शनैश्चर मंगल इन दोनोंकर देखा गया होवे तौ स्थानानुसार भ्राताका नाश होता है अर्थात् तृतीयस्थान शनैश्चर मंगलकर देखा गया होवे तौ छोटे भ्राताका नाश होता है और एकादशस्थान शनैश्चर मंगलकर देखा गया होवे तौ बडे भ्राताका नाश होता है और यदि दोनों स्थान शनैश्चर मंगलकर देखे गये होवें तौ छोटे बडे दोनों भ्राताओंका नाश होता है ॥ ३६ ॥

शनिना स्वमात्रशेषश्च ॥ ३७ ॥

उपपदसे और उपपदस्वामीसे तृतीय और एकादशस्थानमें केवल शनैश्चरकी दृष्टि होवे तौ केवल आप ही शेष रहता है और सब भ्राता मर जाते हैं ॥ ३७ ॥

केतौ भगिनीबाहुल्यम् ॥ ३८ ॥

उपपदसे और उपपदस्वामीसे तृतीय और एकादशस्थानपर केतु स्थित होवे तो यथास्थान बहिनी बहुत होती हैं अर्थात् तृतीयस्थानपर केतु स्थित होवे तो छोटी बहिनी बहुत होवे हैं और एकादशस्थानपर केतु स्थित होवे तो बडी बहिनी बहुत होवे हैं ॥ ३८ ॥

लाभेशाद्भाग्यभे राहौ दंष्ट्रावान् ॥ ३९ ॥

उपपदसे जो कि सप्तमस्थानका स्वामी है उससे द्वितीय राशिपर राहु होवे तौ स्थूल डाढोंवाला होता है[1] ॥ ३९ ॥

केतौ स्तब्धवाक् ॥ ४० ॥

उपपदसे जो कि सप्तमस्थानका स्वामी है उससे द्वितीयस्थानपर केतु स्थित होवै तौ अप्रकट अक्षरोंवाले वचनका कहनेवाला होता है ॥ ४० ॥

मन्दे कुरूपः ॥ ४१ ॥

उपपदसे सप्तमस्थानके स्वामीसे द्वितीयस्थानपर शनैश्चर होवे तौ भयानकरूपवाला होता है ॥ ४१ ॥

स्वांशवशाद्गौरनीलपीतादिवर्णाः ॥ ४२ ॥

आत्मकारकका जो कि नवांश है उसके स्वभावसे गौर नील पीतादिक वर्ण जातकके कहे। भाव यह है कि आत्मकारकके नवांशका जो कि अन्यजातक प्रसिद्ध वर्ण है वही गौर नील पीतादि वर्ण जातकका जानना और इसी प्रकार पुत्रादिकारक नवांशवशसे पुत्रादिकोंका गौर नील पीतादि वर्ण जानने ॥ ४२ ॥

अमात्यानुचराद्देवताभक्तिः ॥ ४३ ॥

अमात्यसंज्ञक ग्रहसे अंश कलादिमें जो कि ग्रह कम होवे उससे देवताभक्ति विचारनी चाहिये। भाव यह है कि, अमात्यसंज्ञक

---

१ यहांपर अन्य प्राच्यवचन भी हैं--"सप्तमेशाद्द्वितीयस्थे राहौ मूकः खले स्थिते। अदन्तोऽधिकदन्तो वा दंष्ट्रायुक्तोऽथवा भवेत् ॥ पवनव्याधिमान् केतौ यद्वा स्यादस्फुटोक्तिमान् । तत्र नानाग्रहैर्योगे मिश्रं फलमुदाहृतम् ॥" अर्थ--उपपदसे जो कि सप्तमेश है उससे द्वितीयस्थानमें राहु स्थित होवे तौ मूक होता है और खलग्रह स्थित होवे तौ विना दांत अथवा अधिक दांतवाला होता है और केतु स्थित होवे तौ वातव्याधिवाला होता है अथवा अप्रकट वचन कहनेवाला होता है और अनेक ग्रहोंका योग होवे तो मिला हुआ फल कहे।

ग्रहसे अंशकलादिमें जो कि ग्रह कम होवे वह देवताकारक होता है उससे देवताभक्ति जाननी। यदि देवताकारक ग्रह शुभ होवे तौ सौम्यदेवताकी भक्ति होवे है और क्रूर होवे तौ क्रूर देवताकी भक्ति होवे है। यदि देवताकारक ग्रह उच्च अथवा स्वराशिस्थ होवे तौ दृढभक्ति और नीच अथवा स्वराशिका देवताकारक ग्रह होवे तौ अदृष्ट भक्ति होवे है ॥ ४३ ॥

स्वांशे केवलपापसम्बन्धे परजातः ॥ ४४ ॥

आत्मकारकके नवांशपर केवल पापग्रहोंका दृष्टियोग आदिक सम्बन्ध होवे तौ जारसे उत्पन्न हुआ जानना। यहां सम्बन्ध शब्दसे दृष्टियोग षड्वर्ग जानने ॥ ४४ ॥

नात्र पापात् ॥ ४५ ॥

यदि आत्मकारक पाप ग्रह होवे तौ यह फल नहीं होता है। भाव यह है कि, आत्मकारकके नवांशपर आत्मकारकसे अन्य पाप ग्रहका संबन्ध होवे तौ यह फल कहना न कि पापग्रहरूप आत्मकारकसे अथवा अत्र नाम अष्टमस्थानमें पाप ग्रह होवे तौ भी यह योग नहीं होता है ॥ ४५ ॥

शनिराहुभ्यां प्रसिद्धिः ॥ ४६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशपर शनैश्चर और राहुका योग दृष्टि षड्वर्ग होवे तो जारसे उत्पन्न होनेकी प्रसिद्धि होवे है ॥ ४६ ॥

गोपनमन्येभ्यः ॥ ४७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशपर अन्य पापग्रहोंका योग दृष्टि षड्-वर्ग होवे तौ जारसे उत्पन्न होनेकी प्रसिद्धि नहीं होवे है किन्तु जारसे उत्पन्न होनेमें छिपावट रहती है ॥ ४७ ॥

शुभवर्गेऽपवादमात्रम् ॥ ४८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशपर पाप ग्रहोंका जारजातकत्वयोग होवे और शुभ ग्रहोंका षड्वर्ग संबन्ध होवे तो जारसे तो उत्पन्न न हुआ हो केवल जारसे उत्पन्न होनेका कलंकमात्रही होवे है ॥ ४८ ॥

द्विग्रहे कुलमुख्यः ॥ ४९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें दो ग्रहोंका योग होवे तौ कुलमें मुख्य होता है ॥ ४९ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रप्रथमाध्याये श्रीनीलकण्ठीयतिलकानुसृतभाषाटीकायां श्रीपाठकमङ्गलसेनात्मजकाशिरामविरचितायां चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ द्वितीयाध्यायः ।

प्रथमः पादः ।

इसके अनन्तर आयुर्दायका विचार करते हैं-

आयुः पितृदिनेशाभ्याम् ॥ १ ॥

लग्नेश और अष्टमेश इन दोनोंसे आयुःप्रमाण विचारना चाहिये१

प्रथम लग्नेश अष्टमेश दोनोंकी स्थितिवशसे दीर्घायुयोग कहते हैं-

प्रथमयोरुत्तरयोर्वा दीर्घम् ॥ २ ॥

प्रथम नाम चरराशिपर अथवा स्थिर द्विस्वभाव इन दोनोंपर लग्नेश अष्टमेश ये दोनों होवें तो दीर्घायु होवे है । भाव यह है कि, जहां कहीं भी लग्नेश अष्टमेश ये दोनों चरराशिपर ही केवल स्थित होवें तो दीर्घायु होवे है अथवा लग्नेश अष्टमेश इन दोनोंमें एक स्थिर राशिपर और एक द्विस्वभाव राशिपर स्थित होवे अर्थात् लग्नेश स्थिरराशिपर होवे तो अष्टमेश द्विस्वभाव राशिपर होवे, अथवा लग्नेश द्विस्वभाव राशिपर होवे तो अष्टमेश स्थिरराशिपर होवे तब दीर्घायुयोग होता है ॥ २ ॥

इसके अनन्तर मध्यायुयोग दिखाते हैं-

प्रथमद्वितीययोरन्त्ययोर्वा मध्यम् ॥ ३ ॥

चर स्थिर इन दोनों राशियोंपर अथवा केवल द्विस्वभाव राशि-

पर ही लग्नेश अष्टमेश दोनों स्थित होवें तो मध्यायु होवे है । भाव यह है कि लग्नेश अष्टमेश इन दोनोंमेंसे एक चर राशिपर स्थित होवे और एक स्थिर राशिपर स्थित होवे अर्थात् लग्नेश चर राशिपर होवे तो अष्टमेश स्थिर राशिपर होवे और अष्टमेश चर राशिपर होवे तो लग्नेश स्थिर राशिपर स्थित होवे तो मध्यायुयोग होता है,अथवा लग्नेश अष्टमेश दोनों जहां कहींभी केवल द्विस्वभाव राशिपरही स्थित होवें तो भी मध्यायुयोग होता है ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर अल्पायुयोग कहते हैं-

मध्ययोराद्यन्तयोर्वा हीनम् ॥ ४ ॥

केवल स्थिर राशिपर ही लग्नेश अष्टमेश ये दोनों स्थित होवें तो अल्पायुयोग होता है अथवा लग्नेश अष्टमेश इन दोनोमेंसे एक चर राशिपर और एक द्विस्वभाव राशिपर स्थित होवे अर्थात् लग्नेश चर राशिपर तो अष्टमेश द्विस्वभाव राशिपर स्थित होवे; वा अष्टमेश चर-राशिपर तो लग्नेश द्विस्वभावराशिपर स्थित होवे तो अल्पायुयोग होता है ॥ ४ ॥

जिस प्रकार कि लग्नेश अष्टमेश इन दोनोंकी राशिस्थिति भेद कर दीर्घायु आर मध्यायु और अल्पायुयोग कहा तिसी प्रकार लग्न चन्द्रमा इन दोनोंसे भी कहा है-

एवं मन्दचन्द्राभ्याम् ॥ ५ ॥

जिस प्रकार कि लग्नेश अष्टमेश इन दोनोंमेंसे दीर्घायु मध्यायु अल्पायुयोग कहे तिसी प्रकार लग्न चन्द्रमा इन दोनोंसे दीर्घायु मध्यायु अल्पायुयोग विचारने चाहिये ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर आयुर्दायके निर्णय करनेका तृतीय प्रकार कहते हैं-

पितृकालतश्च ॥ ६ ॥

जन्मलग्न और होरालग्न इन दोनोंसेभी पूर्वोक्त प्रकारसे दीर्घमध्या-ल्पायुर्योग विचारने चाहिये । भाव यह है कि, जिस प्रकार कि लग्नेश

अष्टमेश इन दोनोंसे आयुर्विचार किया जाता है तिसी प्रकार जन्मलग्न होरालग्न इन दोनोंसे आयुका विचार कर्तव्य है[1] ॥ ६ ॥

जो तीन प्रकारके आयुर्दायनिर्णयके उपाय हैं उन तीनोंमें एकाकार आयु आवे तौ कुछ विवाद नहीं और जो दो प्रकारसे एकाकार आयु आवे और एक प्रकारसे भिन्न आयु आवे तहां निर्णय करते हैं–

संवादात्प्रामाण्यम् ॥ ७ ॥

दो प्रकारसे जो कि आयु आवे वही ग्रहण करने योग्य है न कि एक प्रकारसे आया हुआ आयु ग्रहण करने योग्य है ॥ ७ ॥

यदि तीनों प्रकारसे भिन्न २ आयु आवें तहां निर्णय करते हैं–

विसंवादे पितृकालतः ॥ ८ ॥

यदि तीनों पक्षोंकी विरूपता होवे तौ जन्मलग्न होरालग्नसे आया हुआ आयु ग्रहण करने योग्य है । भाव यह है कि यदि तीनों प्रका

---

१ इस सूत्रमें जो कि होरालग्नका ग्रहण किया है सो होरालग्नका बनान पूर्व कह चुके हैं । वृद्धवचनोंसे तीन प्रकारसे दीर्घमध्याल्पायुयोगों विचारमें वृद्धवचन भी प्रमाण हैं–"लग्नेशरन्ध्रपत्योश्च लग्नेन्द्वोर्लग्नहोरयोः सूत्राण्येवं प्रयुंजीयात्स्वपापादायुषां त्रये ॥" अर्थ--लग्नेश अष्टमेश और लग्न चन्द्र और लग्नहोरा इन तीनोंमेंसे दो प्रकार कर जो आयु आवे वह ग्रह कर्तव्य है न कि एक प्रकार कर आया हुआ आयु ग्रहण करना चाहिये दी मध्य अल्पायु प्रस्तारचक्रमें देखना चाहिये । प्रस्तारश्लोकः–"चरे चरस्थि द्वन्द्वाः स्थिरे द्वन्द्वे चरस्थिराः । द्वन्द्वे स्थिरोभयचरा दीर्घमध्याल्पकायुषः ॥ अर्थ–यदि चरराशिपर लग्नेश और चर ही राशिपर अष्टमेश अथवा लग्नचं वा लग्न होरापर ये स्थिर होवें तो दीर्घायुयोग होता है और चर और स्थि पर स्थित होवें तो मध्यायुयोग होता है और चर और द्विस्वभाव राशिप स्थित होवे तो अल्पायुयोग होता है और यदि स्थिर राशि और द्विस्वभा राशिमें स्थित होवै तो दीर्घायुयोग होता है और स्थिर और चर राशिप स्थित होवे तो मध्यायुयोग होता है और स्थिर और स्थिर ही राशिप होवें तो अल्पायुयोग होता है । यदि द्विस्वभाव और स्थिर राशिपर स्थि होवे तो दीर्घायुयोग होता है । और द्विस्वभावपर स्थित होवे तौ मध्यायु

रसे भिन्न २ आयु आवे तौ जो कि जन्मलग्न होरालग्नसे आया हुआ आयु है उसीका ग्रहण करना चाहिये ॥ ८ ॥

तीनों प्रकारसे भिन्नता होनेपर जन्मलग्न होरालग्नसे आये हुए आयुका निषेध कहते हैं-

पितृलाभगे चन्द्रे चन्द्रमन्दाभ्याम् ॥ ९ ॥

तीनों प्रकारकी भिन्नता होनेपर यदि लग्न अथवा सप्तमस्थानपर चन्द्रमा स्थित होवे तो चन्द्रमा और लग्नसे आया हुआ आयु ग्रहण करने योग्य है× ॥ ९ ॥

—योग होता है और द्विस्वभाव और चर राशिपर स्थित होवे तो अल्पायुयोग होता है इसी प्रकार प्रस्तार चक्र जानना।

प्रस्तारचक्रम् ।

	दीर्घायुः	मध्यायुः	अल्पायुः	
लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा	चर चर	चर स्थिर	चर द्विस्वभाव	लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा
लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा	स्थिर द्विस्वभाव	स्थिर चर	स्थिर स्थिर	लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा
लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा	द्विस्वभाव स्थिर	द्विस्वभाव द्विस्वभाव	द्विस्वभाव चर	लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा

× अल्पायुष्यादिक वृद्धोंने कहा है-"द्वात्रिंशात्पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततो भवेत्। चतुःषष्ट्याः पुरस्तात्तु ततो दीर्घमुदाहृतम् ॥" अर्थ-बत्तीस वर्षसे पूर्व अल्पायु होवे है और बत्तीस वर्षसे पश्चात् चौंसठ वर्षपर्यन्त मध्यायु होवे है और चौंसठ वर्षसे ऊपर छयानवे वर्ष पर्यन्त दीर्घायु होवे है। जन्मसे बत्तीस पर्यन्त और बत्तीससे चौंसठ वर्ष पर्यन्त और चौंसठ वर्षसे छयानवे वर्ष पर्यन्त आये हुए आयुर्दायका स्पष्ट करना वृद्धोंने कहा है। 'प्रथमयोरुत्तरयोर्वा दीर्घम्'। इत्यादि सूत्रोंकर जो कि आयु निर्णीत हुआ है वह यदि दीर्घायु होवे तो मध्यमायुके अवधि चौंसठ वर्ष पर्यंत निःसन्देह सिद्ध आयु होही गया, उससे ऊपर बत्तीस वर्षके दीर्घायुके खण्डमें कितने वर्ष-

इसके अनन्तर दीर्घमध्यल्पायुयोगोंके विषे कुछ विशेष कहते हैं-

शनौ योगहेतौ कक्ष्याह्रासः ॥ १० ॥

यदि शनैश्चर आयुयोगका करनेवाला होवे तौ एक खंडकी न्यूनता हो जावे है। तात्पर्य यह है कि शनैश्चर यदि आयुयोगका करनेवाला होवे तौ दीर्घायुमें मध्यायु रहता है और मध्यायुमें अल्पायु रहता है और अल्पायुमें कुछभी नहीं रहता ॥ १० ॥

-लेने चाहिये इस संशयको दूर करनेके लिये यहां वृद्धवचन है--"पूर्णमादौ हानिरन्तेऽनुपातो मध्यतो भवेत्। राशिद्वयस्य योगार्द्धं वर्षाणां स्पष्टमुच्यते॥" अर्थ-यदि लग्नेश अष्टमेश ये दोनों राशिके आरम्भमें विद्यमान होवें तौ बत्तीस वर्षका दीर्घ मध्य अल्प आयुका खण्ड पूर्ण ग्रहण करना चाहिये और यदि राशिके अन्तभागमें होवे तौ उस बत्तीस वर्षके खण्डका विनाश हो जाता है और यदि मध्यमें स्थित होवे तो त्रैराशिकसे खण्डका एक देशग्रहण करना चाहिये। भाव यह है कि लग्नेश अष्टमेश राशिके आरम्भमें ही स्थित हों तौ दीर्घायुके योगमें छयानवे वर्षतक आयुका प्रमाण है। मध्यायुके योगमें चौंसठ वर्षतक आयुका प्रमाण है। अल्पायुके योगमें बत्तीस वर्षतक आयुका प्रमाण है और यदि लग्नेश अष्टमेश राशिके अन्तमें स्थित होवें तो दीर्घायुके योगमें चौंसठ वर्षतक आयुका प्रमाण है और मध्यायुके योगमें बत्तीस वर्षतक आयुका प्रमाण है। अल्पायु योगमें कुछ भी आयुका प्रमाण नहीं है और यदि लग्नेश अष्टमेश राशिके मध्यभागमें स्थित होवें तौ त्रैराशिक करनेसे जो वर्ष आवे वह यदि दीर्घायुका होवे तो चौंसठ वर्षमें जोड़ देवे और मध्यायुके होवें तौ बत्तीस वर्षमें जोड देवे और यदि अल्पायुके होवें तो वह आये हुए ही वर्ष निज आयुके जानने। परन्तु त्रैराशिक लग्नेश और अष्टमेश इन दोनोंका पृथक् २ करके दोनोंको जोड़ आधा कर लेवे, जो फल आवे उसको दीर्घ मध्यालपयुक्त खण्ड जाने न कि एक एकके त्रैराशिक फलको। त्रैराशिक करनेका यह विधान है जब कि लग्नेश वा अष्टमेशके तीस अंश चले जाते तौ बत्तीस वर्ष प्राप्त होते, अब एक अंश चला गया है तो क्या प्राप्त होवेगा? तब बत्तीसको एकसे गुणा कर तीसका भाग दिया, लब्ध मिला १ २/३० । इसी प्रकार लग्नेश अष्टमेश दोनोंके त्रैराशिकसे वर्ष स्पष्ट करके परस्पर जोड़ देवे। फिर आधा करके

इसके अनन्तर इसी विषयमें मतान्तर कहते हैं—

विपरीतमित्यन्ये ॥११॥

कोई आचार्य कहते हैं कि यदि शनैश्चर आयुयोगकर्त्ता होवे तौ यह पूर्वोक्त वचन नहीं होता किन्तु शनैश्चर योगकारक होनेसे यथा स्थित आयु रहता है ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर परमत कहकर निजमत कहते हैं—

सूत्राभ्यां न स्वर्क्षतुङ्गे सौरे ॥ १२ ॥

केवलपापदृग्योगिनि च ॥ १३ ॥

यदि शनैश्चर अपनी राशिपर अथवा उच्चराशिपर स्थित होवे तथा शुभग्रह संबंधी दृष्टियोगसे वर्जित होकर केवल पाप ग्रहसंबंधि दृष्टियोगसे युक्त होवे तौ कक्ष्याऱ्हास नहीं होता है अर्थात् यथास्थित आयु रहता है अन्यथा ऱ्हास होवे है ॥ १२ ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर कक्ष्यावृद्धि योग कहते हैं—

पितृलाभगे गुरौ केवलशुभदृग्योगिनि च कक्ष्यावृद्धिः ॥ १४ ॥

यदि बृहस्पति लग्न अथवा सप्तमस्थानमें स्थित होवे और पापग्रह संबन्धी दृष्टियोगसे वर्जित होकर केवल शुभग्रहसंबन्धी दृष्टियोगसे युक्त मध्यायु होवे तौ दीर्घायु और दीर्घायु होवे तौ छयानवे वर्षसे भी अधिक आयु होवे है ॥ १४ ॥

—जो फल आवे उसको दीर्घायुयोग होवे तौ चौंसठ वर्षमें जोड़ देवे, जो जोड़ फल आवे वही दीर्घायुका प्रमाण जानना और यदि मध्यायुयोग होवे तो बत्तीस वर्षमें जोड देवे, जो जोड फल आवे वही मध्यायुका प्रमाण जानना और यदि अल्पायुयोग होवे तो वही जन्मसे लेकर आयुका प्रमाण होता है। इसी प्रकार लग्नचन्द्रमा और लग्नहोरा इनके आये हुए आयुमें खण्डका स्पष्टीकरण जानना चाहिये। अन्य वचन है—"होरालग्नादिमांशं तु पूर्णमन्ते न किञ्चन। स्पष्टीकरणमेतत्स्याद्दीर्घमध्याल्पकायुषि ॥" अर्थ—और त्रैराशिक पूर्ववत ही होता है। इस कथनसे होरालग्न भी अंशादियुक्त दिखाया है।

प्रमाणसिद्ध आयुमें ही मरण होता है या बीचमें भी मरण हो जाता है इस आकांक्षामें कहते हैं—

मलिने द्वारबाह्ये नवांशे निधनं द्वारद्वारेशयोश्च मालिन्ये ॥ १५ ॥

द्वारराशि और बाह्यराशि ये दोनों स्वयं पाप और पापग्रहोंसे युक्त तथा पापग्रहोंकर देखेगये होवें तौ द्वारराशि और बाह्यराशिका नवांशदशामें मरण हो जाता है तथा द्वारराशि और द्वारराशीश ये दोनोंभी स्वयं पाप और पापग्रहोंसे युक्त तथा पापग्रहोंकर देखे गये होवें तौ द्वारराशि तथा द्वारेशाश्रित राशिकी नवांशदशामें मरण हो जाता है[१] ॥ १५ ॥

इस मरणयोगका निषेध भी कहते हैं—

शुभदृग्योगान्न ॥ १६ ॥

द्वारराशि और बाह्यराशि और द्वारेश इनपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि

१"दशाश्रयो द्वारम्,ततस्तावतिथं बाह्यम्" द्वितीय अध्यायके चतुर्थपाद-सम्बंधी द्वितीय तृतीय इन सूत्रोंमें द्वारराशि और बाह्यराशिका लक्षण कहा है। जिस कालमें जिस राशिकी जो कि दशा चरस्थिरनामसे होवे उस दशाश्रय राशिको द्वार कहते हैं,इसीका दूसरा नाम पाकराशि है और लग्न-से जितनी संख्यापर द्वारराशि होवे उतनी ही संख्यापर द्वारराशिसे बाह्य-राशि कही है, इसी बाह्यराशिको भोग राशि कहते हैं। यहां लग्नशब्दसे वह राशि ग्रहण करना चाहिये जिस राशिके कि प्रथमसे दशाका आरम्भ होता है। कहीं तौ लग्नसे ही दशाका आरम्भ होता है और कहीं सप्तमसे ही दशाका आरम्भ होता है और कहीं ब्रह्मग्रहके राशिसे दशाका आरम्भ होता है इनमेंसे आद्यदशाकी राशि जो होवे वही पाकराशिकी अवधि होवी है न कि प्रसिद्ध लग्न "विषमे तदादिर्नवांशः" इस द्वितीय अध्यायके तृतीय पाद सम्बंधी प्रथम सूत्रमें नवांशदशा कही है. नवांशदशा समस्त राशियों की होवे है नवांशदशामें प्रत्येक राशिके नौ नौ वर्ष होते हैं, यदि लग्नमें विषम राशि होवे तौ लग्नसे ही नवांशदशाका आरम्भ होता है। और यदि समराशि होवे तौ सप्तमराशिसे नवांशदशाका आरम्भ होता है।

तथा योग होवें तौ द्वारराशि तथा बाह्यराशि तथा द्वारेशराशि इनकी नवांशदशामें मरण नहीं होता है ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि योग न होनेपर भी नवांशका कालमृत्युका निषेध कहते हैं–

रोगेशे तुङ्गे नवांशवृद्धिः ॥ १७ ॥

जन्मलग्नसे अष्टमस्थानका स्वामी यदि उच्चराशिपर स्थित होवे तौ कहा हुआ मृत्युयोग होनेपरभी नवांशदशामें मृत्यु नहीं होती है किन्तु उससे ऊपर नौ वर्षकी वृद्धि हो जावे है ॥ १७ ॥

यदि कहो कि नवांशदशामें राशिवृद्धि हो जावे है तो फिर किस राशिमें मृत्यु होता है इस शंकामें कहते हैं–

तत्रापि पदेशदशान्ते पदनवांशदशायां पितृदिनेशत्रिकोणे वा ॥ १८ ॥

वृद्धिपक्ष होनेपरभी लग्नारूढ स्थानके स्वामीका जो कि आश्रित राशि है उसकी दशाके अन्तमें मरण होता है अथवा जन्मलग्नारूढ राशिके नवांशदशामें मरण होता है अथवा लग्नेश अष्टमेशसे लग्न पञ्चम नवम इनमेंसे किसी राशिकी दशामें अथवा इनकी अन्तर्दशामें होवे तौ मरण होता है ॥ १८ ॥

इसके अनन्तर अन्य प्रकारसे दीर्घमध्याल्पायुर्योग कहते हैं–

पितृलाभरोगेशे प्राणिनिकंटकादिस्थे स्वतश्चैवंत्रिधा १९

लग्नसे सप्तम स्थानका जो कि स्वामी है और लग्नसे अष्टमस्थानका जो कि स्वामी है इन दोनोंमें जो कि बली होवे वह यदि केन्द्र पणफर आपोक्लिम संज्ञक स्थानमें स्थित होवे तौ क्रमसे तीन प्रकारकर दीर्घमध्याल्पायुर्योग होता है। भाव यह है कि लग्नसे सप्तमेश अष्टमेशमें जो कि बली होवे वह यदि केन्द्र नाम लग्नसे लग्न चतुर्थ सप्तम दशम इन स्थानोंपर स्थित होवें तौ दीर्घायुर्योग होता है और यदि पणफर नाम लग्नसे द्वितीय पञ्चम अष्टम एकादश इन स्थानोंपर स्थित होवे तौ मध्यायुर्योग होता है और यदि

आपोक्लिम नाम लग्नसे तृतीय षष्ठ नवम द्वादश इन स्थानोंपर स्थित होवे तौ अल्पायुर्योग होता है और इसी प्रकार आत्मकारकसे भी योगत्रय जानने। आत्मकारकसे सप्तमेश अष्टमेशमें जो कि बली हो वह यदि केंद्रमें स्थित होवे तौ दीर्घायुर्योग होता है और पणफरमें स्थित होवे तौ मध्यायुर्योग होता है और आपोक्लिममें स्थित होवे तौ अल्पायुर्योग होता है ॥ १९ ॥

योगात्समे स्वस्मिन्विपरीतम् ॥ २० ॥

जन्मलग्नसे जो कि सप्तम स्थान है उससे जो कि सम नाम नवम-स्थान है उसमें यदि आत्मकारकग्रह स्थित होवे तौ विपरीत होता है अर्थात् "पितृलाभे" इत्यादि सूत्रके कहे हुए योग नहीं होते हैं, किन्तु दीर्घायु आया हो तौ मध्यायु होता है और मध्यायु आया हो तौ अल्पायु होता है और अल्पायु आया हो तौ कुछ भी नहीं. अथवा कोई आचार्य ऐसा अर्थ करते हैं—दीर्घायु होवे तौ अल्पायु और अल्पायु होवे तौ दीर्घायु और मध्यायु होवे तौ मध्यायु ही होता है[1] ॥ २० ॥

---

१ यहां आयुर्दायविषयमें वृद्ध कुछ और विशेष कहते हैं—"एकोऽष्टमेशः स्वोच्चस्थः पर्यायार्द्धं प्रयच्छति। नीचस्थो नाशयेत्पर्यायार्द्धमायुषिनिश्चिते ॥ नीचरन्ध्रेशसंयुक्ताः पर्यायार्द्धं पृथक् पृथक्। ग्रहा विनाशयन्त्येवं निर्णीते परमायुषि ॥ उच्चरन्ध्रेशसंयुक्तग्रहैः प्रत्येकमुन्नयेत्। एकैकमर्द्धपर्यायं परमायुषि निश्चिते ॥" अर्थ—एक अष्टमेश उच्चका होवे तौ अपनी दशाका अर्द्ध-भाग देता है और नीचका होवे तौ अपनी दशाका अर्द्धभाग निश्चित किये आयुमेंसे दूर कर देता है। भाव यह है कि "पितृदिनेशाभ्यां" इस सूत्रमें जो अष्टमेश ग्रहण किया है वह अष्टमेश यदि उच्चका होवे तौ अपनी दशाका अर्द्धभाग देता है अर्थात "नाथान्ताः" इस सूत्रकी रीतिसे जितना आयु आवे उसमें उसीका आधा और जोड देवे और नीचका होवे तौ आयुमेंसे अर्ध भाग दूर कर देवे। इसी प्रकार और ग्रह भी यदि नीच अष्टमेशसे युक्त होवे तौ अपनी आयुका अर्धभाग पृथक् २ दूर कर देते हैं और यदि उच्च अष्टमेशसे युक्त होवे तौ अपनी दी हुई आयुमें अपनी दशाका अर्द्धभाग अधिक देते हैं। इसी प्रकार लग्नेशादिक ग्रह भी उच्च नीच गुणसे वृद्धि और ह्रास करते हैं।

इस प्रकरणमें कौन बल ग्रहण करना चाहिये इस
शंकामें कहते हैं-

राशितः प्राणः ॥ २१ ॥

यहां राशिसे बल ग्रहण करना चाहिये । भाव यह है कि "कारकयोगः प्रथमो भानाम्" इत्यादि सूत्रद्वारा कहे जानेवाला राशिबल ग्रहण करना चाहिये न कि अंशाधिक्य बल ग्रहण करना चाहिये २१

इसके अनन्तर अन्य प्रकारसे मध्यायुर्योग कहते हैं-

रोगेशयोः स्वत ऐक्ये योगे वा मध्यम् ॥ २२ ॥

लग्नसे अष्टमेश तथा सप्तमसे अष्टमेश इनका आत्मकारकके साथ ऐक्यता होवे अथवा इनके साथ आत्मकारकका योग होवे तौ मध्यायु होवे है । भाव यह है कि,लग्नसे अष्टमेश आत्मकारक हो अथवा लग्नसे अष्टमेशके साथ आत्मकारकका योग होवे या सप्तमसे अष्टमेश आत्मकारक हो अथवा सप्तमसे अष्टमेशके साथ आत्मकारकका योग होवे तौ " पितृलाभ " इत्यादि सूत्रसे प्राप्त हुए दीर्घायुवालोंकी भी मध्यायु होवे है[1] ॥ २२ ॥

इसके अनन्तर दीर्घादि योगोंके विषे कक्ष्याह्रास कहते हैं-

पितृलाभयोः पापमध्यत्वे कोणपापयोगे वा कक्ष्याह्रासः ॥ २३ ॥

लग्न और सप्तम स्थान इन दोनोंको पाप ग्रहके मध्यवर्ती होनेपर कक्ष्याह्रास होता है । भाव यह है, कि लग्नकुण्डलीके द्वितीय और बारहवें स्थानमें और छठे और आठवें स्थानमें पापग्रहोंके योग होनेसे लग्न और सप्तमस्थानको पापमध्यत्व होता है । यदि लग्न सप्तम स्थानका पापमध्यत्व योग होवे तो दीर्घायुर्योगमें मध्यायु और मध्यायुर्योगमें अल्पायु और अध्यायुर्योगमें कुछभी नहीं होताहै. अथवा

---

१ अन्य जातकशास्त्रमें लग्नकी और इस ग्रन्थमें आत्मकारककी प्रधानता होनेसे अष्टमेशके योगकर आयुका ह्रास ही होता है ऐसा जानना ॥

लग्न और सप्तमसे जो कि कोण नाम लग्न पंचम नवम स्थान है इन सबमें पाप ग्रहोंका योग होवे तबभी कक्ष्याहास होता है ॥ २३ ॥

स्वस्मिन्नप्येवम् ॥ २४ ॥

आत्मकारकभी लग्नकुण्डलीवत् होता है। तात्पर्य यह कि, आत्मकारकके राशि और आत्मकारकके सप्तमराशिको पापग्रहके मध्यवर्ती होनेमेंभी कक्ष्याहास होता है अथवा आत्मकारकसे त्रिकोण नाम लग्न पंचम सप्तमस्थानोंपर सब जगह पापग्रहोंका योग होवे तब भी कक्ष्याहास होता है ॥ २४ ॥

तस्मिन्पापे नीचेऽतुङ्गेऽशुभसंयुक्ते च ॥ २५ ॥

यदि वह आत्मकारक पापग्रह होकर नीच राशिपर स्थित हो तब भी कक्ष्याहास होता है अथवा पापग्रह होकर आत्मकारक अपने उच्चराशिमें स्थित न हो किन्तु अशुभग्रहोंसे संयुक्त होवे तोभी कक्ष्याहास होता है ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर कक्ष्याहासयोगमें निषेध कहते हैं—

अन्यदन्यथा ॥ २६ ॥

लग्न सप्तम अथवा आत्मकारक सप्तम यह अन्यथा नाम शुभ ग्रहोंके मध्यवर्ती होवे अथवा लग्न और सप्तमसे अथवा आत्मकारकसे प्रथम पंचम नवम इनमें सब जगह शुभ ग्रहोंका योग होवे अथवा आत्मकारक शुभ ग्रह होकर नीचका न होवे अथवा आत्मकारक शुभ ग्रह होकर उच्च राशि और शुभ ग्रह संयुक्त होवे तो अन्यत् अर्थात् कक्ष्यावृद्धि होवे है याने अल्पायुर्योग होवे तो मध्यायु होता है और मध्यायुर्योग होवे तो दीर्घायु होवे है और दीर्घायुर्योग होवे छ्यानवे वर्षसेभी अधिक आयु होवे है इस कथनसे यह जानना चाहिये कि समस्तयोग पापात्मक होवें तो कक्ष्याहास होता है और समस्त योग शुभात्मक होवें तो कक्ष्यावृद्धि होवे है

और समस्त योग शुभ पाप दोनोंसे वर्जित होवें तो न कक्ष्यावृद्धि और न कक्ष्याह्रास होता है ॥ २६ ॥

इसके अनन्तर ह्रासवृद्धिप्रकार बृहस्पतिके विषेभी दिखाते हैं–

गुरौ च ॥ २७ ॥

बृहस्पतिेभी लग्नकुण्डलीवत् होता है भाव यह है कि, बृहस्पतिसे द्वितीय द्वादश षष्ठ अष्टम त्रिकोण इन स्थानोंके विषे पूर्व कथनानुसार पापग्रहोंका योग होवे तो कक्ष्याह्रास होता है अथवा बृहस्पति नीच हो या उच्चसे वर्जित होकर पाप ग्रहोंसे युक्त होवे तौभी कक्ष्याह्रास होता है और जो अन्यथा होवे तो अन्यथा ही फल होता है अर्थात् बृहस्पतिसे द्वितीय द्वादश षष्ठ अष्टम त्रिकोण इन स्थानोंपर पूर्वकथनानुसार शुभ ग्रहोंका योग होवे तो कक्ष्यावृद्धि होवे है अथवा बृहस्पति उच्चका होकर शुभ ग्रहोंसे युक्त होवे तौ भी कक्ष्यावृद्धि होवे है ॥ २७ ॥

पूर्णेन्दुशुक्रयोरेकराशिवृद्धिः ॥ २८ ॥

शुभग्रहयोगप्रकरणमें लग्न आत्मकारक बृहस्पतिसे जो कि स्थान कहे हैं उनमें यदि पूर्णचन्द्र और शुक्रका योग होवे तौ निर्णीत हुए आयुमें कक्ष्यावृद्धि नहीं होती किन्तु एकराशिवृद्धि होवे अर्थात् लग्न आत्मकारक बृहस्पत्यादिकोंमेंसे जिससे कक्ष्यावृद्धि होती है उस राशिके दशावर्षोंकी वृद्धि होवे है ॥ २८ ॥

पापयोगसे जो कि कक्ष्याह्रास कहा उसमें अपवाद दिखाते हैं–

शनौ विपरीतम् ॥ २९ ॥

पापयोगप्रकरणमें लग्न आत्मकारक बृहस्पतिसे जो कि स्थान कहे हैं उनमें यदि शनैश्चर होवे तौ कक्ष्याह्रास नहीं होता है किन्तु एकराशि ह्रास होवे है अर्थात् लग्न आत्मकारक बृहस्पत्यादिकोंमेंसे जिससे कक्ष्याह्रास होता है उस राशिके दशावर्षोंका ह्रास होता है । इन

दोनों सूत्रोंके कथनका यह अभिप्राय है कि चन्द्र शुक्र शनैश्चर इनको प्रधानतासे योगकारक होनेपर अन्य ग्रहोंको योगकरक हुए संते भी एक राशिकी वृद्धि वा ह्रास ही होता है न कि कक्ष्याकी ॥ २९ ॥

इसके अनन्तर स्थिरदशाके आश्रयसे मरणयोग कहते हैं–

स्थिरदशायां यथाखण्डं निधनम् ॥ ३० ॥

स्थिर दशामें आयुखण्डके अनुसार मरण होता है। भाव यह है कि परमायुके दीर्घ मध्य अल्पायु नामसे तीन विभाग करे पूर्वोक्त रीतिसे आयुका जो खण्ड आया होवे उसमें यदि मरण लक्षक युक्त राशिकी स्थिर दशा आ जावे तौ मरणलक्षणयुक्त राशिकी स्थिर दशामें ही मरण होता है और मरणकारक खण्डसे पूर्वखण्डमें मरण॰ लक्षणयुक्त राशिकी स्थिर दशा आ जावे तौ उसमें मरण नहीं होता है किन्तु क्लेश अधिक होता है ॥ ३० ॥

यदि कहो कि दीर्घ मध्य अल्पायुभेदसे मरणखण्ड तो निर्णीत हो गया पर विशेषकर मरणकालज्ञान तो इससे नहीं हुआ, तहां कहते हैं–

तत्रर्क्षशेषः ॥ ३१ ॥

तिस मरणमें राशिविशेष है। भाव यह कि, मरणकारक कोई राशिविशेष होता है ॥ ३१ ॥

यदि कहो कि कौन मरणकारक राशिविशेष होता है ? तहां कहते हैं–

पापमध्ये पापकोणे रिपुरोगयोः पापे वा ॥३२॥

दो पाप ग्रहोंके मध्यमें जो कि राशि होवे उस राशिकी दशामें

---

१ "शशिनन्दपावकाः क्रमादब्दाः स्थिरदशायाम्" स्थिर दशाके वर्षोंके लानेकी रीति इस द्वितीयाध्यायके तृतीय सूत्रमें कही है ॥

अथवा प्रथम दशाप्रद राशिसे त्रिकोणमें और अष्टमस्थानमें पाप ग्रहोंका योग होवे तौ उस राशिकी दशामें मरण होता है[1] ॥ ३२ ॥

तदीशयोः केवलक्षीणेन्दुशुक्रदृष्टौ वा ॥ ३३ ॥

द्वादशस्थानका स्वामी और अष्टमस्थानका स्वामी इनपर अन्य ग्रहोंकी दृष्टि तौ होवे नहीं किन्तु केवल क्षीणचन्द्र और शुक्र इनकी दृष्टि होवे तौ द्वादश और अष्टम राशिकी दशामें मरण होता है ॥३३॥

यदि कहो कि बहुवर्षव्यापिनी दशा होवे तौ कब मरण होगा ? इस शंकामें कहते हैं–

तत्राप्याद्यक्षारिनाशदृश्यनवभागाद्वा ॥ ३४ ॥

जो कि मरणकारक राशिदशा कही हैं उनमें ही जो कि प्रथम दशाप्रद राशि है उसका स्वामी और उससे छठे स्थानका स्वामी इन दोनों कर नवांशकुण्डलीमें जो कि राशि देखा गया हो उस राशिके अन्तर्दशामें मरण होता है[2] ॥ ३४ ॥

इसके अनन्तर निर्याणदशाविशेषको अन्य प्रकारसे दिखानेके वास्ते रुद्रग्रहको कहते हैं–

पितृलाभभावेशप्राणी रुद्रः ॥ ३५ ॥

लग्न और सप्तम स्थानसे जो कि अष्टम स्थानके स्वामी हैं उन दोनोंमें जो कि बली होवे वह रुद्रसंज्ञक ग्रह होता है ॥ ३५ ॥

---

१ यह वृद्धोंने भी कहा है– "शुभमध्ये मृतिर्नैव पापमध्ये मृतिर्भवेत्"। कोई आचार्य "पापकोणे०" इत्यादि पदोंका यह अर्थ करते हैं– लग्नेश वा आत्मकारकसे पापयुक्त त्रिकोण राशिकी दशामें अथवा पापयुक्त द्वादशाष्टम-राशिकी दशामें मरण होता है ॥

२ कोई आचार्योंने आद्यशब्दसे दशम राशि और अरिशब्दसे षष्ठ राशि ग्रहण किया है उन आचार्योंकी इस प्रकार व्याख्या योग्य नहीं, क्योंकि, जब कि आद्यशब्दसे दशम राशि लिया तो अरि शब्दसे अष्टम राशि लेना चाहिये था और यदि ऐसा तात्पर्य ग्रन्थकर्त्ताका होता तौ "रिःफतन्तुनाथ-दृश्यनवभागाद्वा" ऐसा सूत्र होना चाहिये था ॥

इसके अनन्तर द्वितीय रुद्रग्रहको कहते हैं—

अप्राण्यपि पापदृष्टः ॥ ३६ ॥

लग्न सप्तमस्थानसे अष्टमस्थानका स्वामियोंमें जो कि दुर्बलग्रह होवे वह यदि पापग्रहने देखा हो तौ रुद्रसंज्ञक होता है । दो रुद्र होते हैं एक बली और दूसरा निर्बली ॥ ३६ ॥

इसके अनन्तर बली रुद्रका फल कहते हैं—

प्राणिनि शुभ दृष्टे रुद्रशूलान्तमायुः ॥ ३७ ॥

जो कि बलवान् रुद्रसंज्ञक ग्रह है वह यदि शुभग्रहोंकर देखा गया हो तौ रुद्रग्रहसे शूल नाम प्रथम पंचम नवम राशिके दशापर्यन्त आयु होवे है अथवा बलवान् रुद्रसंज्ञक ग्रह शुभ ग्रहोंने देखा होवे तहां यदि अल्पायुर्योग होवे तौ रुद्रग्रहसे प्रथमराशिदशापर्यन्तही आयु होवे है और मध्यायुर्योग होवे तौ रुद्रग्रहसे पञ्चमराशिदशापर्यन्त आयु होवे है और दीर्घायुर्योग होवे तौ रुद्रग्रहसे नवमराशि दशापर्यन्त आयु होवे है ॥ ३७ ॥

तत्रापि शुभयोगे ॥ ३८ ॥

यदि द्वितीय निर्बली रुद्रके विषेभी शुभ ग्रहोंका योग होवे तौभी रुद्रग्रहसे प्रथम पंचम नवम राशिदशापर्यन्त आयु होवे है ॥ ३८ ॥

व्यर्कपापयोगेन ॥ ३९ ॥

सूर्यको त्यागकर अन्य पाप ग्रहोंका योग यदि रुद्रसंज्ञक ग्रहके विषे होवे तौ यह फल नहीं होता है अर्थात् रुद्रग्रहसे प्रथम पंचम नवम राशिदशापर्यन्त आयु होनेका फल नहीं होता है किन्तु सूर्यके योगमें रुद्रग्रहसे प्रथम पंचम नवम राशिदशापर्यन्त आयु होनेका फल होता है ॥ ३९ ॥

इसके अनन्तर दोनों रुद्रोंका गुणविशेषकर फल दिखाते हैं—

मन्दारेन्दुदृष्टे शुभयोगाभावे पापयोगेऽपि वा शुभदृष्टौ वा परतः ॥ ४० ॥

बली अथवा निर्बली रुद्र शनैश्चर, मंगल, चंद्र इनकर देखा गया

हो और उस रुद्रपर शुभ ग्रहका योग होवे नहीं एक योग यह है और बली अथवा निर्बली रुद्र शनैश्चर, मंगल, चंद्र इनकर देखा गया हो और उस रुद्रपर पापग्रहका योग होवे द्वितीय योग यह है और बली अथवा निर्बली रुद्र शनैश्चर, मंगल, चन्द्र इनकर देखा गया हो और उसपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि होवे तृतीययोग यह है। इन तीनों योगोंमेंसे कोई योग संपूर्ण होवे तौ रुद्रग्रहसे प्रथम पंचम नवम राशिदशापर्यन्तसे भी अगाडीतक आयु होवे है[1] ॥ ५० ॥

---

१ इस सूत्रमें जो कि दो वाकार हैं "वाकारद्वयमनास्थायाम्" इस प्रकार कहकर वे दोनों वाकार पंथोंने दो योगके जतानेवाले ही कहे हैं सो यह पन्थवचन युक्त नहीं, क्योंकि दोनों वाकारोंकी अनास्थाकल्पनामें कोई प्रमाण नहीं इससे दोनों वाकारोंसे तीन योग ही प्रकट होवे हैं। इस प्रकरणमें शुभ पापग्रहोंका लक्षण वृद्धोंने कहा है। "अर्कारमन्दफणिनः क्रमात् क्रूरा यथाश्रयम्। चन्द्रोऽपि क्रूर एवात्र क्वचिदङ्गारकाश्रये ॥ गुरुध्वजकविज्ञाः स्युर्यथापूर्वं शुभग्रहाः॥" अर्थ-सूर्य, मंगल, शनैश्चर, राहु ये क्रमसे यथाश्रय नाम क्रूर राशिपर स्थित होवें तो क्रूर होते हैं और शुभ राशिपर स्थित होवें तो क्रूर नहीं होते किन्तु शुभ ही होते हैं और बृहस्पति, केतु, शुक्र, बुध, ये यथापूर्व शुभग्रह होते हैं। बुधसे शुक्र, शुक्रसे केतु, केतुसे बृहस्पति ये उत्तरोत्तर शुभ ग्रह हैं। जिस प्रकार कि क्रूरग्रहोंकी क्रूरराशिमें स्थित होनेसे ही क्रूरता होवे है और शुभ राशिमें स्थित होनेसे शुभता होवे है तिसी प्रकार बृहस्पति आदिकोंकी शुभ राशिमें स्थिति होनेसे शुभता होवे है और पापराशिमें स्थिति होनेसे शुभता नहीं होती है। ऐसा वृद्धोंने भी कहा है "प्रत्येकं शुभराशिस्थ उच्चस्थो वा बुधः शुभः। गुरुशुक्रौ च सौम्यस्थौ ततोऽन्यत्राशुभाः स्मृताः॥" यदि रुद्रशूलमें मरण कहा तो किस शूलमें मरण होना चाहिये? इस विषयमें वृद्धोंने विशेष कहा है-- "पापमात्रस्य शूलत्वे प्रथमर्क्षे मृतिर्भवेत। मिश्रे मध्यमशूलर्क्षे शुभमात्रेऽन्त्यभे मृतिः॥" अर्थ-यदि दोनों रुद्र पाप ग्रह होवें तो रुद्रग्रहसे प्रथम राशिकी दशामें मरण होता है और यदि एक रुद्र पापग्रह होवे और द्वितीय शुभग्रह होवे तौ रुद्रग्रहसे पञ्चमराशिकी दशामें मरण होता है और यदि दोनों रुद्र शुभ ग्रह होवें तो रुद्रग्रहसे नवम राशिकी दशामें मरण होता है॥

कदाचित् रुद्राश्रितराशिमें भी मरण होता है इसी योगको कहते हैं-

रुद्राश्रयेऽपि प्रायेण ॥ ४१ ॥

रुद्राश्रित राशिमें भी आयुकी समाप्ति होवे है। भाव यह है कि, जिस राशिमें रुद्र ग्रह स्थित होवे है उस राशिकी दशामें भी कदाचित् मरण होता है। सूत्रमें प्रायःशब्दका प्रयोग होनेसे रुद्राश्रित राशिसे पहिले वा पीछे भी आयुकी समाप्ति होवे है ऐसा ध्वनित होता है ॥ ४१ ॥

क्रिये पितरि विशेषेण ॥ ४२ ॥

जब मेष जन्मलग्न होवे तौ विशेषकर रुद्राश्रित राशिमेंही आयुकी समाप्ति होवे है। भाव यह है कि जन्मलग्नमें मेषराशि होवे तौ जिस राशिमें रुद्रग्रह स्थित होवे उस राशिकी दशामें ही आयुकी समाप्ति होवे है ॥ ४२ ॥

इसके अनन्तर योगभेदसे मरणस्थान दिखाते हैं-

प्रथममध्यमोत्तमेषु वा तत्तदायुषाम् ॥ ४३ ॥

अल्प मध्य दीर्घायुर्योगवालोंकी प्रथम मध्यम उत्तम नाम प्रथम द्वितीय तृतीय रुद्रशूलोंके विषे क्रमसे आयु समाप्ति होवे है। भाव यह है कि,अल्पायुर्योग होवे तौ प्रथम रुद्रशूलमें आयुकी समाप्ति होवे है और मध्यायुर्योग होवे तौ द्वितीय रुद्रशूलमें आयुकी समाप्ति होवे है और दीर्घायुर्योग होवे तौ तृतीय रुद्रशूलमें आयुकी समाप्ति होवे है। इस प्रकार रुद्रशूलराशिकी महादशामें मरणयोगसिद्ध हो चुका उसीकी किसी अन्तर्दशामें मरण हो जाता है ॥ ४३ ॥

इसके अनन्तर फलविशेषके कहनेके लिये महेश्वरग्रहको दिखाते हैं-

स्वभावेशो महेश्वरः ॥ ४४ ॥

---

१ सूत्रमें वा शब्दके प्रयोगसे यह ध्वनित होता है कि रुद्रशूलसे मरणयोग हुए संतेभी अन्यबलवान् योगवशसे रुद्रशूलद्वारा मरणका बाधभी होजाताहै।

आत्मकारकग्रहसे जो कि अष्टमराशिका स्वामी है वह महेश्वर संज्ञक ग्रह होता है ॥ ४४ ॥

स्वोच्चे स्वगृहे रिपुभावेशः प्राणी ॥ ४५ ॥

यदि आत्मकारकसे अष्टम राशिका स्वामी उच्च व अपने गृहमें स्थित होवे तौ आत्मकारकसे द्वादश अष्टम राशियोंके स्वामियोंमें जो बलवान् होता है वह महेश्वरसंज्ञक होता है और यदि आत्म-कारकसे द्वादश अष्टम राशियोंके स्वामी दोनों बलवान् होवें तौ दोनों महेश्वरसंज्ञक होते हैं[1] ॥ ४५ ॥

इसके अनन्तर द्वितीय प्रकारसे महेश्वरग्रहको कहते हैं–

पाताभ्यां योगे स्वस्य तयोर्वा रोगे ततः ॥ ४६ ॥

आत्मकारकका पात नाम राहुकेतुमेंसे किसीके साथ योग होवे अथवा आत्मकारकके अष्टम स्थानपर राहु केतुमेंसे किसीका योग होवे तौ आत्मकारकसे सूर्यादिगणनाके क्रमसे जो छठा ग्रह होवे वह महेश्वर होता है। दो तीन महेश्वर होनेके योगमें जो बली होता है वह महेश्वर होता है[1] ॥ ४६ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्मग्रह कहते हैं–

प्रभुभाववैरीशप्राणी पितृलाभप्राण्यनुचरो विषमस्थो ब्रह्मा ॥ ४७ ॥

लग्न सप्तम इन दोनों राशियोंमें जो कि बलवान् होवे उससे जो कि षष्ठ अष्टम द्वादश इन स्थानोंके स्वामी हैं उनमें जो कि बलवान् हो वह यदि लग्न सप्तममेंसे बलवान् राशिमे पृष्ठ राशिस्थ होकर मेष मिथुनादि विषमराशिपर स्थित होवे तौ वही ग्रह ब्रह्मा होता है। लग्नके पृष्ठ राशि सप्तमसे लेकर द्वादशपर्यंत होते हैं और सप्तमके पृष्ठराशि लग्नसे लेकर षष्ठपर्यंत होते हैं[2] ॥ ४७ ॥

---

१ "स्वोच्चे संग्रहे रिपुभावेशः प्राणी" ऐसा सूत्र होनेपर यह अर्थ निक-लता है कि आत्मकारकका उच्च राशि यदि ग्रहयुक्त होवे तो आत्मकारकसे अष्टम द्वादश राशियोंके स्वामियोंसे बली ग्रह महेश्वर होता है ॥

२ लग्नसे द्वादश एकादश दशम नवम अष्टम सप्तम ये राशि पृष्ठ हैं और सप्तमसे षष्ठ पञ्चम चतुर्थ तृतीय द्वितीय लग्न ये राशि पृष्ठ हैं ॥

इसके अनन्तर अन्य प्रकारसे ब्रह्मग्रह कहते हैं-

ब्रह्मणि शनौ पातयोर्वा ततः ॥ ४८ ॥

यदि शनैश्चर ब्रह्मलक्षण युक्त होवे अथवा राहु केतु ब्रह्मलक्षण युक्त होवें तौ शनैश्चर वा राहु केतुसे जो कि छठा ग्रह है वह ब्रह्मा होता है न कि शनैश्चरादिक। भाव यह है कि, यदि शनैश्चर वा राहु केतु इनमेंसे कोई ब्रह्मयोगकारक होवे तो ये ब्रह्मा नहीं होते किन्तु इनसे छठा ग्रह ब्रह्मा होता है ॥ ४८ ॥

यदि कहो कि बहुत ग्रह ब्रह्मयोगकारक होवें तो कौन ब्रह्मा होता है ? इस शंकामें कहते हैं-

बहूनां योगे स्वजातीयः ॥ ४९ ॥

यदि बहुत ग्रह ब्रह्मयोगकारक होवें तो उनमें जो कि आत्मकारक-जातीय अर्थात् अधिक अंशवाला ग्रह है वह ब्रह्मा होता है ॥ ४९ ॥

इस योगमें कुछ विशेष कहते हैं-

राहुयोगे विपरीतम् ॥ ५० ॥

ब्रह्मसंज्ञक ग्रहके साथ यदि राहुका संयोग होवे तो विपरीत होता है। भाव यह है कि,ब्रह्मसंज्ञक ग्रह राहुके साथमें होवे तो बहुतसे ब्रह्मयोगकारक ग्रहोंमें कम अंशवाला ग्रह ब्रह्मा होता है। इस कथनसे यह जनाया गया कि शनैश्चर राहु केतु इनमेंसे ब्रह्मयोग होनेपर भी ब्रह्मा नहीं हो सकता, परन्तु राहुका ब्रह्मयोग होनेपर यदि बहुतसे ब्रह्मयोगकारक ग्रहोंके मध्यमें राहु न्यूनांश होवे तौ ब्रह्मा हो सकता है ॥ ५० ॥

इसके अनन्तर अन्यप्रकारसे ब्रह्मग्रह कहते हैं-

ब्रह्मा स्वभावेशो भावस्थः ॥ ५१ ॥

आत्मकारकसे अष्टमस्थानका स्वामी और आत्मकारकसे अष्टम स्थानपर स्थित हुआ ग्रह ब्रह्मा होता है[1] ॥ ५१ ॥

---

१ इस सूत्रकी कोई आचार्य यह व्याख्या करते हैं कि, आत्मकारकसे अष्टम राशिका स्वामी आत्मकारकसे अष्टम स्थित होवे तौ वह आत्मका-

यदि अष्टमेश अष्टमस्थ इन दोनोंमें भेद होवे तो कौन ब्रह्मा होता है ? इस शंकामें कहते हैं–

विवादे बली ॥ ९२ ॥

यदि ब्रह्मलक्षणयुक्त दोनों ग्रहोंको ब्रह्मत्व होवे तो उनमें जो कि बली है वह ब्रह्मा होता है अथवा समस्त ब्रह्मसंज्ञक तुल्यांश होवे तो विना ग्रहवाले राशिसे ग्रहवाला राशि और एक ग्रहवाले राशिसे दो ग्रहवाला राशि और दो ग्रहवाले राशिसे तीन ग्रहवाला राशि बली होता है इस रीतिसे जो ग्रह बली होवे वह ब्रह्मा होता है ॥ ९२ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्मा महेश्वर दोनोंका बल कहते हैं–

ब्रह्मणो यावन्महेश्वरर्क्षदशान्तमायुः ॥ ९३ ॥

स्थित दशामें ब्रह्मग्रहाश्रित राशिसे लेकर महेश्वराश्रित राशिकी दशापर्यंन्त आयु होवे है। भाव यह है कि, जिस राशिका ब्रह्मग्रह होवे उस राशिसे और आरम्भकरके जिस राशिका कि महेश्वर ग्रह है उस राशिकी स्थिरदशापर्यन्त आयु होवे है ॥ ९३ ॥

इसके अनन्तर महादशामें भी मरणकारक जो कि अन्तर्दशा है उसको कहते हैं–

तत्रापि महेश्वरभावेशत्रिकोणाब्दे ॥ ९४ ॥

–रकसे अष्टम स्थानका स्वामी ब्रह्मा होता है। यह व्याख्या उचित नहीं, क्योंकि इस सूत्रकी ऐसी व्याख्या होनेपर "विवाद बली" यह सूत्र इसमें न घटनेसे यह सूत्र अयोग्य हो जावेगा, क्योंकि अन्तरको प्राप्त होनेसे पूर्वान्वित भी यह सूत्र नहीं है। दूसरे "बहूनां योगे" इस सूत्रसे ही पूर्व शंका दूर हो ही चुकी है इससे अष्टमेश और अष्टमस्थ इन दोनोंमें एकको निर्विवाद ब्रह्मत्व होता है ॥

जिस राशिका महेश्वर हो उस राशिकी स्थिर दशामें भी जब कि महेश्वराधिष्ठित राशिसे अष्टम राशिके स्वामीका जो कि त्रिकोण नाम प्रथम पंचम नवमरूप राशि है उसका जब कि एक दो वर्षरूप अन्तर्दशाकाल होवे उसमें मरण होता है[1] ॥ ५४ ॥

इसके अनन्तर दो सूत्रोंसे मारकग्रहको दिखाते हैं-

स्वकर्मचितरिपुरोगनाथप्राणिमारकः ॥ ५५ ॥

आत्मकारकसे तृतीय षष्ठ द्वादश अष्टम इन स्थानोंके स्वामियोंके मध्यमें जो कि बलवान् होवे वही मारक ग्रह होता है और यदि सब ग्रह समान बली होवें तौ सबही ग्रह मारक होते हैं। यदि कहो कि बहुतसे ग्रह मारक होवें तो किसकी दशामें मरण होता है तहां यह जानना कि, अल्प मध्य दीर्घायुओंमें जिसका जहां जहां संभव होवे उसी राशिदशामें मरण होता है[2] ॥ ५५ ॥

इसके अनन्तर मारकका फल कहते हैं-

तद्दक्षदशायां निधनम् ॥ ५६ ॥

जिस राशिका मारक ग्रह होवे अथवा जिस राशिका मारक ग्रह स्वामी होवे उसकी चरस्थिरादिरूप महादशामें मरण होता है ॥५६॥

---

१ सूत्रमें अब्दशब्दका प्रयोग राशिदशाके बारह वर्षके अभिप्रायसे किया गया है यदि न्यूनसंख्याकर दशा होवे तो वर्षसे न्यून ही अन्तर्दशाओंके भी विषे लाना चाहिये ॥

२ बहुधा मुख्यताकर आत्मकारकसे षष्ठेश ही मारक होता है । यहां वृद्धोंने भी कहा है—"षष्ठाष्टमेशौ भवतो मारकावष्टमेश्वरः । प्रायेण मारको राशिदशास्वत्राविशेषतः ॥ षष्ठभे पापभूमिष्ठे षष्ठेशो मुख्यमारकः । षष्ठात्त्रिकोणके वापि मुख्यमारक इष्यते ॥ मध्यायुषि मृतिः षष्ठदशायामष्टमस्य वा। षष्ठत्रिकोणस्य पुनर्दीर्घाल्पविषये भवेत ॥ षष्ठे बलयुते तस्य त्रिकोणे मृतिमादिशेत् । षष्ठेशश्चेद्बलाढयः स्यात्तत्त्रिकोणे मृतिं वदेत् ॥ व्यवस्थेयं समस्तापि कारकादि दशास्वपि । बलिनः शुक्रशशिनोर्ग्राह्यं षष्ठाष्टमादिकम् ॥" अर्थ-यदि षष्ठेश अष्टमेश दोनों मारक होवें बहुधा कर अष्टमेश ही मारक—

इसके अनन्तर मारकमहादशामें जो कि मरणकारक अन्तर्दशा है उसको कहते हैं-

तत्रापि कालाद्रिपुरोगचित्तनाथापहारे ॥ ५७ ॥

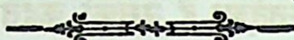
मारकग्रहकी दशामेंभी आत्मकारकके सप्तमसे द्वादश अष्टम षष्ठ स्थान इनके स्वामियोंके मध्यमें जो बलवान् होवे उसका जब अन्तर्दशाकाल आवे उसमें मरण होता है' ॥ ५७ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रद्वितीयाध्याये नीलकंठीयतिलकानुसृतभाषा-
टीकायां श्रीपाठ कमण्डलसेनात्मजकाशिरामकृतायां
प्रथमः पादः समाप्तः ॥ १ ॥

-होता है। यदि षष्ठराशि अधिक पापग्रहोंसे युक्त होवे तौ मुख्यतासे षष्ठेश मारक होता है अथवा षष्ठसे त्रिकोण स्थानपर स्थित हुआ ग्रह भी मारक होता है। यदि मध्यायु होवे तौ षष्ठ अथवा अष्टमराशिकी दशामें मरण होता है और दीर्घायु वा अल्पायु होवे तौ षष्ठराशिसे त्रिकोण नाम प्रथम पञ्चम नवम राशिकी दशामें मरण होता है। यदि षष्ठराशि बलयुक्त होवे तौ उसके त्रिकोणराशिमें मरण कहे और यदि षष्ठेश बलवान् होवे तो षष्ठेशसे त्रिकोणराशिमें मरण कहै। लग्नसप्तममें जो बली होवे उससे षष्ठ अष्टमादिक ग्रहण करने चाहिये यही समस्त व्यवस्था कारकादि दशाओंमें भी होवे है।

१ यहांपर वृद्धोंने विशेष कहा है। "चरे चरस्थिरद्वन्द्वा इति यो राशिरागतः। स एव मारको राशिभवतोति विनिर्णयः॥ बाहुराशिसमावेशे बलवान् मारकः स्मृतः॥अर्थ-लग्नेश अष्टमेश तथा लग्नचन्द्र लग्नहोरा यह दो दो आयुर्दायकारक जिस राशि पर स्थित होवें वह राशि मारक होता है और यदि वह राशि बहुतसे होवे सो विना ग्रहके राशिसे ग्रहयुक्त राशि और एक ग्रह युक्त राशिसे दो ग्रहयुक्त राशि बली होता है इस रीतिसे जो राशि बली होवे वह मारक होता है। उस मारकराशिका स्वामी जिस राशिपर स्थित होवे उस राशिकी दशामें मरण होता है और अन्य ऐसा कहते हैं। "चरे इत्यादिनायुर्यत्तत्समाप्त्युचितो भवेत। यो राशिः स तु विज्ञेयो मारकः सूत्रसम्मतः॥" चरे "चरस्थिरद्वन्द्वाः" इस श्लोकसे जो कि आयु आया है वह दीर्घमध्याल्परूप आयु जिस राशिमें समाप्त होवे वही राशि मारक होता है॥

अथ द्वितीयपादः।



इसके अनन्तर पित्रादिकोंका मरणकाल जतानेके लिये पित्रादिकारकको कहते हैं-

रविशुक्रयोः प्राणी जनकः ॥ १ ॥

सूर्य और शुक्र इन दोनोंके मध्यमें जो बलवान् होवे वह पितृकारक होता है ॥ १ ॥

चन्द्रारयोर्जननी ॥ २ ॥

चंद्रमा मंगल इन दोनोंमें जो कि बली होवे वह मातृकारक होता है ॥ २ ॥

अप्राण्यपि पापदृष्टः ॥ ३ ॥

सूर्य शुक्र और चंद्र मंगल इनके मध्यमें जो निर्बली हो वह यदि पापग्रहने देखा होवे तो यथाक्रम पितृमातृकारकताको प्राप्त होता है। भाव यह है कि, सूर्य शुक्र इन दोनोंमें जो कि निर्बली होवे वह यदि पापग्रहने देखा हो तो पितृकारक होता है और चंद्रमा मंगल इन दोनोंमें जो कि निर्बली होवे वह यदि पापग्रहने देखा होवे तो मातृकारक होता है ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर बली पितृमातृकारकका फल कहते हैं-

प्राणिनि शुभदृष्टे तच्छूले निधनं मातापित्रोः ॥ ४ ॥

बली पितृकारक अथवा बली मातृकारक शुभ ग्रहने देखा होवे तो जिस राशिपर पितृकारक वा मातृकारक स्थित होवे उस राशिसे त्रिकोणराशिकी दशामें पिता और माताका मरण जानना ॥ ४ ॥

तद्भावेशे स्पष्टबले ॥ ५ ॥

तच्छूल इत्यन्ये ॥ ६ ॥

बली हो अथवा निर्बली हो ऐसे दोनों प्रकारके पितृमातृकारकसे

अष्टम स्थानका स्वामी पितृमातृकारकसे अधिक बली अर्थात् अधिकांश होवे तो जिस राशिका अष्टमेश होवे उस राशिसे त्रिकोण नाम प्रथम पंचम नवम राशिकी दशामें पितृमातृका मरण जानना ऐसा अन्य आचार्य कहते हैं। पितृकारकसे ऐसा योग होवे तो पिताका मरण और मातृकारकसे ऐसा योग होवे तो माताका मरण जाने[1] ॥ ९ ॥ ६ ॥

आयुषि चान्यत् ॥ ७ ॥

पितृआदिकोंके आयुके विचार किये जानेपर पितृआदिकोंका कारक और अन्य प्रकारसे कहे हुए निर्याणशूलदशादिकका भी विचार करना चाहिये ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर पितृमरणमें विशेष कहते हैं-

अर्कज्ञयोगे तदाश्रयेल ग्नमेषदशायां पितुरित्येके ॥ ८ ॥

लग्नसे क्रिय नाम द्वादशराशि वह होवे है जो सूर्यबुधाश्रय अर्थात् सिंह मिथुन कन्या है और उसमें सूर्य और बुधका योग होवे तो लग्नसे पंचम राशिकी दशामें पिताका मरण होता है ऐसा कोई आचार्य कहते हैं। भाव यह कि, लग्नसे द्वादश सिंह मिथुन कन्यामेंसे कोई होवे और उसमें सूर्य बुध इन दोनोंका योग होवे तो लग्नसे पंचम राशिकी दशामें पिताका मरण होता है[2] ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर बाल्यावस्थामेंही मातापितृके मरण योगको कहते हैं-

व्यर्कपापमात्रदृष्टयोः पित्रोः प्राग्द्वादशाब्दात् ॥ ९ ॥

---

१ "तद्वावेशे स्पष्टबले" इस सूत्रमें जो कि "अधिबले" पदके जगह स्पष्टबले" ऐसा पद कहा है उससे अंशाधिक बल ग्रहण करना चाहिये ॥

२ "अर्कज्ञयोगे तदाश्रये क्रिये लग्ने मेषदशायां पितुरेत्येके" यदि ऐसे पाठ होवें तौ यह अर्थ हुआ यदि क्रियनाम मेषराशि सूर्य बुध इन दोनोंके योगसे युक्त होकर लग्नमें होवे तो मेषराशिकी दशामें पिताका मरण होता है ॥

बली हो अथवा निर्बली हो ऐसे दोनों प्रकारके पितृमातृकारक यदि सूर्यवर्जित अन्य पापग्रहमात्रने देखे होवें तो बारह वर्षसे पूर्वही पितृमातृका यथाक्रम मरण होता है। भाव यह है कि, बली वा निर्बली पितृकारक सूर्यवर्जित पापग्रहमात्रने देखा हो तो पिताका मरण होता है और बली वा निर्बली मातृकारक सूर्यवर्जित पापग्रह मात्रने देखा हो तो माताका मरण होता है और सूर्य वा शुभ ग्रहकी दृष्टि होवे तो यह योग नहीं होता है ॥ ९ ॥

इसके अनन्तर स्त्रीमरणकाल कहते हैं-

गुरुशूले कलत्रस्य ॥ १० ॥

जिस राशिपर बृहस्पति स्थित होवे उस राशिसे त्रिकोणराशिकी दशामें स्त्रीका मरण होता है ॥ १० ॥

इसके अनन्तर पुत्रमातुलादिकोंका भी मरणकाल कहते हैं-

तत्तच्छूले तेषाम् ॥ ११ ॥

पुत्रमातुलादिकारक जिस २ राशिपर स्थित होवें उसी २ राशिसे त्रिकोणराशिकी दशामें पुत्रमातुलादिकोंका मरण होता है ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर मरणमें शुभाशुभ भेद दिखाते हैं-

कर्मणि पापयुतदृष्टे दुष्टं मरणम् ॥ १२ ॥

लग्नसे अथवा कारकसे तृतीय स्थान पापग्रहकर युक्त होवे अथवा पापग्रहने देखा हो तो दुष्ट मरण होता है ॥ १२ ॥

शुभं शुभदृष्टियुते ॥ १३ ॥

लग्नसे अथवा कारकसे तृतीय स्थान शुभ ग्रहसे युक्त होवे अथवा शुभ ग्रहने देखा होवे तो शुभ मरण होता है। अग्निसे जलसे गिरनेसे बन्धनादिसे जो मरण होता है वह दुष्ट कहाता है और ज्वरादिरोगसे जो मरण होता है वह शुभ कहाता है ॥ १३ ॥

मिश्रे मिश्रम् ॥ १४ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थानपर शुभ अशुभ दोनोंकी दृष्टि अथवा योग होवे तो शुभाशुभरूप मरण होता है ॥ १४ ॥

आदित्येन राजमूलात् ॥ १५ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थानपर सूर्यका योग वा दृष्टि होवे तो राजाके निमित्तसे मरण होता है ॥ १५ ॥

चंद्रेण यक्ष्मणः ॥ १६ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थान चन्द्रमासे युक्त वा देखा गया हो तो क्षयरोगसे मृत्यु होता है ॥ १६ ॥

कुजेन व्रणशस्त्राग्निदाहाद्यैः ॥ १७ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थान मंगलसे युक्त वा देखा गया हो तो व्रण शस्त्र अग्निदाहादिसे मरण होता है ॥ १७ ॥

शनिना वातरोगात् ॥ १८ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृयीयस्थान शनिसे युक्त वा देखा गया हो तो वातरोगसे मरण होता है ॥ १८ ॥

मन्दमान्दिभ्यां विषसर्पजलोद्बन्धनादिभिः ॥ १९॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थान शनैश्चर और गुलिकेसे युक्त वा देखा गया हो तो विष सर्प जल बन्धनादिकसे मरण होता है ॥ १९ ॥

केतुना विषूचीजलरोगाद्यैः ॥ २० ॥

लग्न वा कारकसे तृतीयस्थान केतुसे युक्त वा देखा गया हो तो विषूचिका जलरोगादिकोंसे मरण होता है ॥ २० ॥

चन्द्रमान्दिभ्यां पूगमदान्नकवलादिभिः क्षणिकम्॥२१॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थान चन्द्र और गुलिकसे युक्त वा दृष्ट हो तो सुपारी मद तथा अन्नग्रासादिसे शीघ्र ही मरण हो जाता है ॥ २१ ॥

---

१ गुलिकके स्पष्ट करनेका विधान प्रथमाध्यायके द्वितीयपाद सम्बन्धी उन्तीसवें सूत्रकी टिप्पणी (३२ पृष्ठ) में लिख आये हैं ॥

गुरुणा शोफाऽरुचिवमनाद्यैः ॥ २२ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थान बृहस्पतिसे युक्त वा दृष्ट होवे तो शोफनाम सूजन, अरुचि और वमन इत्यादिकसे मरण होता है ॥ २२ ॥

शुक्रेण मेहात् ॥ २३ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थान शुक्रसे युक्त वा दृष्ट होवे तो प्रमेह रोगसे मृत्यु होता है ॥ २३ ॥

मिश्रे मिश्रात् ॥ २४ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थानपर अनेक ग्रहोंका योग वा दृष्टि होवे तो अनेक रोगोंसे मरण होता है ॥ २४ ॥

चन्द्रदृग्योगान्निश्चयेन ॥ २५ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थानपर जिस ग्रहका योग अथवा दृष्टि होवे और तहां चन्द्रमाका भी योग वा दृष्टि होवे तो अवश्यही उसी ग्रहके रोगसे मरण कहना चाहिये । इस कथनसे यह सिद्ध हुआ कि तृतीयस्थानपर चन्द्रमाका योग वा दृष्टि न होवे तो जिस ग्रहसे कि तृतीयस्थानयुक्त वा दृष्ट है उस ग्रहके रोगसे मरणमें संदेह रहता है ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर मरणमें देशभेदको दिखाते हैं-

शुभे शुभे देशे ॥ २६ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थानपर शुभग्रहोंका योग और दृष्टि होवे तौ काश्यादि पुण्यभूमिमें मरण होता है ॥ २६ ॥

पापैः कीकटे ॥ २७ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थानपर पापग्रहोंका योग दृष्टि होवे तौ मगधादि पापदेशमें मरण होता है और यदि शुभ पाप ग्रह दोनोंका योग और दृष्टि होवे तौ न काश्यादि शुभ देशमें और न मगधादि पाप देशमें किन्तु सामान्यदेशमें मरण होता है ॥ २७ ॥

गुरुशुक्राभ्यां ज्ञानपूर्वम् ॥ २८ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थान बृहस्पति शुक्र इन दोनोंसे युक्त वा देखा गया हो तौ ज्ञानपूर्वक मरण होता है अर्थात् मरण-समय बुद्धि यथावत् रहती है ॥ २८ ॥

अन्यैरन्यथा ॥ २९ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीयस्थान बृहस्पति शुक्रको त्याग अन्य किसी ग्रहसे युक्त वा दृष्ट होवे तौ अज्ञानपूर्वक मरण होता है अर्थात् मरणसमय बुद्धि नहीं रहती है ॥ २९ ॥

लेपजनयोर्मध्ये शनिराहुकेतुभिः पित्रोर्न संस्कर्ता॥३०

लग्न और द्वादशस्थान इन दोनोंके मध्यमें शनैश्चर राहु अथवा शनैश्चर केतु ये दोनों ग्रह होवें तौ मातापिताका दाहादिरूप संस्कार करनेवाला नहीं होता है ॥ ३० ॥

लेपादि पूर्वार्द्धे जनकाद्यपरार्द्धे ॥ ३१ ॥

लग्नसे आदि लेकर प्रथमके छः भावोंमें और द्वादशस्थानसे आदि लेकर पिछले छः भावोंमें राहु शनैश्चर अथवा केतु शनैश्चर ये दोनों विद्यमान होवें तौ क्रमसे माता पिताके दाहादिरूप संस्कार करनेवाला नहीं होता है। भाव यह है कि लग्नसे आदि लेकर छः भावोंमें शनैश्चर राहु अथवा शनैश्चर केतु ये दोनों विद्यमान होवें तौ माताके दाहा-दिरूप संस्कार करनेवाला नहीं होता है और सप्तमसे आदि लेकर छः भावोंमें शनि केतु विद्यमान होवें तौ पिताके दाहादिरूप संस्कार करनेवाला नहीं होता है[1] ॥ ३१ ॥

---

१ शंका-शनैश्चर राहु केतु इन तीनोंका एक जगह होना क्यों नहीं कहा ? क्योंकि सूत्रमें तौ "शनिराहुकेतुभिः" ऐसा पद कहा है। समाधान-राहु केतुकी स्थिति एक जगह नहीं हो सकती इससे तीनोंका एक जगह होना नहीं कहा ॥

शुभदृग्योगान्न ॥ ३२ ॥

यदि लग्नसे लेकर छः भावोंमें और द्वादशस्थानसे लेकर पिछले छः भावोंमें शुभ ग्रहोंकी दृष्टि और योग होवे तौ यह कहा हुआ योग नहीं होता है, किन्तु मातापिताके दाहादिरूप संस्कार करनेवाला होता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रद्वितीयाध्याये श्रीनीलकण्ठीयातिलकानुसृतभाषाटीकायां श्रीपाठकमङ्गलसेनात्मजकाशिरामकृतायां द्वितीयपादः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः पादः ।

इसके अनन्तर दशाभेद बलभेद कहते हैं; तिसमें भी प्रथम नवांशदशाको कहते हैं–

विषमे तदादिर्नवांशः ॥ १ ॥

अन्यथाऽऽदर्शादिः ॥ २ ॥

यदि विषम लग्न होवे तौ लग्नसे आदि लेकर नवांशदशा होवे है और अन्यथा अर्थात् समराशि लग्नमें होवे तौ आदर्शादि नाम सप्तम राशिसे आदि लेकर नवांशदशा होवे है । इस नवांशदशामें प्रत्येक राशिके नौ नौ वर्ष होते हैं इसीसे इसका नाम नवांशदशा जानना ॥

शशिनन्दपावकाः क्रमादब्दाः स्थिरदशायाम् ॥ ३ ॥

स्थिरदशामें चर स्थिर द्विस्वभाव राशियोंके क्रमसे सात व

---

१ यहां आदर्श शब्दका अर्थ सम्मुख है लग्नसे सम्मुख सप्तमराशि ही होती है । "स्थिरराशेः षष्ठराशिश्चरस्याष्टम एव सः । द्विस्वभावस्य राशिस्तु सप्तमः सम्मुखो मतः ॥" अर्थ–स्थिरराशिका चरराशि और चरराशिका अष्टमराशि और द्विस्वभावराशिका सप्तमराशि सम्मुख होता है ऐसा जो कि, पन्थोंने कहा है सो यहां नहीं हो सकता, क्योंकि वह पन्थवचन दृष्टिविषयमें ही है न कि अन्य विषयमें ॥

आठ व नौ वर्ष होते हैं अर्थात् मेष कर्क तुला मकर इनके सात २ वर्ष होते हैं, वृष सिंह वृश्चिक कुम्भ इनके आठ आठ वर्ष होते हैं, मिथुन कन्या धनु मीन इनके नौ नौ वर्ष होते हैं ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर स्थिरदशाका आरम्भस्थान कहते हैं-

ब्रह्मादिरेषा ॥ ४ ॥

जिस राशिपर ब्रह्मग्रह स्थित होवे उस राशिसे आरम्भ करके यह स्थिरदशा प्रवृत्त होती है ॥ ४ ॥

अथ प्राणः ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर बलाधिकारमें राशियोंका बल कहा जाता है ॥५॥

कारकयोगः प्रथमो भानाम् ॥ ६ ॥

राशियोंका प्रथम बल कारक योग होता है अर्थात् विना ग्रहवाली राशिसे ग्रहवाली राशि बली होवे है ॥ ६ ॥

साम्ये भूयसा ॥ ७ ॥

यदि दोनों जगह ग्रहयोगकी समानता होवे तौ बहुतसे ग्रहयोग करके राशियोंका बल होता है अर्थात् थोडे ग्रहवाले राशिसे बहुत ग्रहवाला राशि बली होता है ॥ ७ ॥

ततस्तुङ्गादिः ॥ ८ ॥

यदि ग्रहोंकी बाहुल्यताभी बराबर होवे तौ उच्चादियोग राशियोंका बल होता है अर्थात् दोनों जगह ग्रह बराबर स्थित हों तौ जिस राशिपर उच्चका अथवा स्वराशिपर वा मित्रगृहका ग्रह स्थित होवे वह राशि बली होता है ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर राशियोंका निसर्ग बल कहते हैं-

निसर्गस्ततः ॥ ९ ॥

उच्चादि बलके अनन्तर निसर्गबल ग्रहण करना चाहिये । भाव यह है कि यदि दोनों जगह उच्चस्थ वा स्वगृहस्थ वा मित्रगृहस्थ

ग्रह विद्यमान होवे तो चरसे स्थिर और स्थिरसे द्विस्वभाव इस रीतिसे जो कि राशि बली हो वह ग्रहण करना चाहिये[1] ॥ ९ ॥

तदभावे स्वामिन इत्थंभावः ॥ १० ॥

जिस राशिका यह कहा हुआ कारकयोगादिबल न होवे तो उस राशिके स्वामीका ही यह कारकयोगादिबल ग्रहण करना चाहिये अर्थात् जिस राशिका स्वामी बली होता है वह राशि भी बली होता है ॥ १० ॥

आग्रायतोऽत्र विशेषात् ॥ ११ ॥

यदि एक राशिपर बहुतसे ग्रह विद्यमान हों और उन ग्रहोंका राश्यादिक बलभी समान होवे तो उन ग्रहोंमें जो कि आग्रायत नाम अग्रगामी अर्थात् अधिक अंशवाला हो वह विशेषकर इस ग्रन्थमें बली होता है ॥ ११ ॥

प्रातिवेशिकः पुरुषे ॥ १२ ॥

विषमराशिमें पार्श्ववर्त्ती ग्रह अपने बलको करनेवाला होता है.भाव यह है कि, विषमराशिसे द्वितीय और द्वादश स्थानपर जो कि ग्रह स्थित हो वह अपने बलको उसी विषमराशिमें देता है ॥ १२ ॥

इति प्रथमः ॥ १३ ॥

इस प्रकारसे राशियोंका प्रथम बल कहा है ॥ १३ ॥

स्वामिगुरुज्ञदृग्योगो द्वितीयः ॥ १४ ॥

स्वामीका योग बृहस्पतियोग और बुधका योग यह एक एक बारह राशियोंका बल होता है और स्वामीकी दृष्टि और बृहस्पतिकी दृष्टि और बुधकी दृष्टि यह एक २ बारह राशियोंका बल होता है।

---

१ यहां वृद्धवचन भी है-। " अग्रहात्सग्रहो ज्यायान् सग्रहेष्वधिकग्रहः। साम्ये चरस्थिरद्वन्द्वाः क्रमात्स्युर्बलशालिनः ॥ " अर्थ-विना ग्रहवालेसे ग्रहवाला और ग्रहवालेसे अधिक ग्रहवाला राशि बली होता है और यदि इस प्रकार भी समानता होवे तो चरसे स्थिर और स्थिरसे द्विस्वभाव बली होता है।

इस प्रकार जो कि छः बल है वह राशियोंका द्वितीय बल कहाता है । भाव यह है कि, जिस राशिपर स्वामी बृहस्पति बुध इनका योग या दृष्टि होवे तो वह राशि बली होता है[1] ॥ १४ ॥

स्वामिनस्तृतीयः ॥ १५ ॥

जो कि राशिके स्वामीका बल है वह राशिका तृतीय बल कहा है ॥ १५ ॥

इसके अनन्तर स्वामीका बलाबल दिखाते हैं-

स्वात्स्वामिनः कण्टकादिष्वपारदौर्बल्यम् ॥ १६ ॥

आत्मकारकसे केंद्र पणफर आपोक्लिम इन स्थानोंके विषे स्वामीकी क्रमसे अपार नाम शून्य एक द्विगुण दुर्बलता होवे है । भाव यह है कि आत्मकारकसे प्रथम चतुर्थ सप्तम दशम इन स्थानोंमें जिस राशिका स्वामी स्थित हो वह राशि और स्वामी पूर्ण बली होते हैं और आत्मकारकसे द्वितीय पंचम सप्तम एकादश इन स्थानोंपर जिस राशिका स्वामी स्थित होवे वह राशि और स्वामी अर्द्धबली होते हैं और आत्मकारकसे तृतीय षष्ठ नवम द्वादश इन स्थानोंपर जिस राशिका स्वामी स्थित होवे वह राशि और स्वामी दुर्बल होता है[2] ॥ १६ ॥

चतुर्थतः पुरुषे ॥ १७ ॥

चतुर्थ बलसे भी विषम राशिमें बल होता है । भाव यह है कि

---

१ " द्वितीये भावबलं चरनवांशे " इस अगले सूत्रमें जो कि भावफल ग्राह्य है वह यहां स्पष्ट किया है ॥

२ " अपार " इस शब्दका अर्थ कटपयादिसंख्याके अनुसार है । कटपयादि संख्यामें स्वर शून्य माना जाता है इससे पकारका शून्य अर्थ लेनेसे दुर्बलताकी शून्यता प्राप्त हुई अर्थात् पूर्ण बल रहा और आकारकी संख्या एक है इससे पाकारका एक अर्थ लेनेसे दुर्बलता एकगुणी रही अर्थात् अर्द्ध-बल रहा और रकारकी संख्या दो है इससे रकारकी दो संख्या लेनेसे दुर्बलता दोगुणी रही अर्थात् बलकी शून्यता रही ॥

"पापदृग्योगस्तुङ्गादिग्रहयोगः" इस सूत्रमें जो कि चतुर्थ बल कहा है उस बलसे विषमराशि ही बली होता है[1] ॥ १७ ॥

इसके अनन्तर निर्याणशूलदशा कहते हैं–

पितृलाभप्रथमप्राण्यादिशूलदशानिर्याणे ॥ १८ ॥

लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो कि प्रथम बली होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमसंबन्धी उसी बली राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब मृत्यु होती है । इस निर्याणशूलदशामें प्रत्येक राशिके नौ वर्ष ग्रहण करने चाहिये ॥ १८ ॥

इसके अनन्तर पिताकी निर्याणशूलदशा कहते हैं–

पितृलाभपुत्रः प्राण्यादिः पितुः ॥ १९ ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि नवम राशि है उन दोनों नवम राशियोंमें जो कि बलवान् होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्नसप्तमके बली नवम राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब पिताकी मृत्यु होती है ॥ १९ ॥

इसके अनन्तर माताकी निर्याणशूलदशा कहते हैं–

आदर्शादिर्मातुः ॥ २० ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि चतुर्थ राशि है उन दोनोंमें जो कि बली होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमके बली चतुर्थ राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब माताकी मृत्यु होती है ॥ २० ॥

---

१ कोई आचार्य इस सूत्रका यह अर्थ करते हैं कि, "विषमराशिमें चतुर्थ बल है" सो यह अर्थ योग्य नहीं, क्योंकि ग्रन्थकारका ऐसा अभिप्राय होता तौ "चतुर्थः पुरुषे" ऐसा सूत्र होता तसप्रत्यय न होता। यदि कहो कि चतुर्थ बल कौनसा है ? इस शंकाके दूर करनेको "इति चत्वारः" ऐसा आगे कहेंगे. यदि कहो कि फिर वह बल यहां ही क्यों नहीं कहा ? तहां जानना कि, चतुर्थ बलका इस समय उपयोग नहीं है इससे उपयोगी बल कहकर कुछ दशाओंको दिखाय आगे कहेंगे ॥

इसके अनन्तर भ्राताकी निर्याणशूलदशा कहते हैं-

कर्मादिर्भ्रातुः ॥ २१ ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि तृतीय राशि है उन दोनों तृतीय राशियोंमें जो कि बली होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमसे बली तृतीय राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब भ्राताकी मृत्यु होती है ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर भगिनी पुत्र इन दोनोंकी निर्याण-शूलदशा कहते हैं-

मात्रादिर्भगिनिपुत्रयोः ॥ २२ ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि पंचम राशि है उन दोनों पंचम-राशियोंमें जो कि बली होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमके बली पंचम राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब बहिनी और पुत्र इन दोनोंका मरण होता है ॥ २२ ॥

इसके अनन्तर ज्येष्ठ भ्राताकी निर्याणशूलदशा कहते हैं-

व्ययादिर्ज्येष्ठस्य ॥ २३ ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि एकादश राशि है उन दोनों एकादश राशियोंमें जो कि बली होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमके बली एकादश राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब बडे भ्राताका मरण होता है ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर पितृवर्गकी निर्याणशूलदशा कहते हैं-

पितृवत्पितृवर्गः ॥ २४ ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि नवम राशि है उन दोनों नवम राशि-योंमें जो कि बली है उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमके बली नवमराशिसे १।५।९ राशिकी दशा आवे तब पितृवर्ग नाम पितृव्यादिकोंका मरण होता है। इस निर्याणशूलदशामें सब जगह प्रत्येक राशिके नौ नौ ही वर्ष होते हैं ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्मदशा कहते हैं–

ब्रह्मादिपुरुषे समा दासान्ताः ॥ २५ ॥

जन्मलग्न विषम होवे तो जिस राशिमें ब्रह्मग्रह स्थित होवे उससे आरम्भ करके ब्रह्मदशा प्रवृत्त होवे है। ब्रह्मदशामें प्रत्येक राशिके वर्ष वे होते हैं जो कि राशिसे अपने छठे स्थानके स्वामी तक संख्या है। भाव यह है कि अपनेसे जितनी संख्यापर अपने छठे स्थानका स्वामी स्थित हो उनके वर्ष राशिके ब्रह्मदशामें होते हैं[1] ॥ २५ ॥

स्थानव्यतिकरः ॥ २६ ॥

यदि जन्मलग्न विषम होवे तो जिस राशिपर ब्रह्मग्रह स्थित होवे उससे आरम्भ करके क्रमसे अन्य राशियोंकी दशा होवे है और यदि जन्मलग्न सम होवे तो जिस राशिपर ब्रह्मग्रहस्थित होवे उससे जो कि सप्तम राशि है उसकी प्रथम दशा तत्पश्चात उलटे क्रमसे अन्य राशियोंकी दशा होवे है। भाव यह है कि, लग्न विषम होवे तो ब्रह्माश्रित राशिसे क्रमानुसार और सम लग्न होवे तो ब्रह्मसप्तमराशिसे व्युत्क्रमानुसार दशा लाई जावे है ॥ २६ ॥

इसके अनन्तर चतुर्थ बल कहते हैं–

पापदृग्योगस्तुङ्गादिग्रहयोगः ॥ २७ ॥

पापग्रहोंकी दृष्टि और योग राशिका बल होता है और अपने उच्च

---

१ शंका–दासशब्दकरके षष्ठराशिके स्वामीका कैसे ग्रहण किया है? क्योंकि कटपयादि संख्याद्वारा दासशब्द षष्ठका ही वाचक है। समाधान–षष्ठराशि पर्यन्त ही सब राशियोंके वर्ष लानेमें बहत्तरि वर्षसे ऊपर वर्ष नहीं आ सकते इससे दासान्तशब्दका षष्ठस्वाम्यन्त ऐसा अर्थ योग्य है। शंका–यदि कहो कि समस्त राशियोंके वर्ष लानेमें ब्रह्माश्रित राशिसेही गणना होवे है ऐसा अर्थ इस सूत्रका होना चाहिये। समाधान–यदि ऐसा सूत्रार्थ होता तौ " पुरुषे ब्रह्मादिसमा दासान्ताः " इस प्रकार सूत्र होता ॥

तथा मूल त्रिकोण तथा स्वराशि तथा अतिमित्रराशि तथा मित्रराशि इनपर स्थित हुए शुभग्रहका योग भी राशिका बल होता है ॥ २७ ॥

इसके अनन्तर प्रथमाध्यायमें वर्ष लानेमात्र कही हुई चरदशामें क्रमव्युत्क्रम भेद कहते हैं—

पञ्चमे पदक्रमात्प्रक्प्रात्यत्त्वम् ॥ २८ ॥

मेषराशिसे तीन २ राशियोंका एक २ पद होता है इस प्रकार बारह राशियोंके चार पद होते हैं । प्रथम मेषादि विषम पद, द्वितीय कर्कादि सम पद, तृतीय तुलादि विषम पद, चतुर्थ मकरादि सम पद है । यदि लग्नसे नवमस्थानमें विषमपदसम्बन्धी राशि होवे तो क्रमसे दशा रक्खे और यदि लग्नसे नवम स्थानमें सम पद-सम्बन्धी राशि होवे तौ उलटे क्रमसे दशा रक्खे; चरदशामें दशाके आरम्भका अवधि लग्न ही है. चरदशा वर्ष तो " नाथान्ताः समाः प्रायेण " इस सूत्रद्वारा पहिले कह आये हैं । क्रमव्युत्क्रमभेद नहीं कहा था सो अब कह दिया ॥ २८ ॥

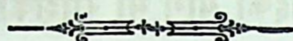
चरदशायामत्र शुभः केतुः ॥ २९ ॥

इस चरदशामें केतु शुभग्रह माना जाता है अर्थात् केतु शुभ फल-दायक होता है ॥ २९ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रद्वितीयाध्याये नीलकंठीयतिलकानुसृतभाषा-टीकायां श्रीपाठकमङ्गलसेनात्मजकाशिरामकृतायां तृतीयः पादः समाप्तः ॥ ३ ॥

शंका—तुङ्गादि और ग्रहयोग इन दोनोंका विभाग करके जो कि पन्थोंने तुङ्गादि बल और ग्रहयोगबल पृथक् ग्रहण किया है सो यह पन्थवचन योग्य नहीं, क्योंकि " पापदृग्योग० " इस सूत्रद्वारा जो कि पापयोगबल कहा सो " ग्रहयोगः " इसी पदसेही उस अर्थका तौ लाभ होनेसे 'पापदृक्' इस शब्दके अगार योगशब्दका प्रयोग करना व्यर्थ हो जायगा । तिससे यह भाव हुआ कि पापग्रह कहीं भी स्थित हो उनके योगमें राशिका बल होता है और शुभग्रह जब कि उच्चादिमें स्थित होंगे तब उनके योगमें राशिका बल होवेगा. इस प्रकार चार कारकयोग हैं तीन तौ पहले कह दिये यह एक चतुर्थ है ॥

अथ चतुर्थः पादः।



द्वितीयं भावबलं चरनवांशे ॥ १ ॥

चरराशिकी नवांशदशामें द्वितीयभावबल फलादेशके लिये ग्रहण करना चाहिये। भाव यह है कि "स्वामिगुरुज्ञदृग्योगो द्वितीयः" इस सूत्रमें जो कि द्वितीय राशिबल कहा है वह चरराशिकी नवांशदशामें फल कहनेके लिये ग्रहण करने योग्य है ॥ १ ॥

इसके अनन्तर द्वारराशि और बाह्यराशि इन दोनोंको दिखाते हैं–

दशाश्रयो द्वारम् ॥ २ ॥

जिस कालमें जिस राशिकी चरस्थिरनामसे दशा होवे वह दशाश्रय राशि द्वार कहाता है और उसीको पाकराशि भी कहते हैं ॥२॥

ततस्तावतिथं बाह्यम् ॥ ३ ॥

लग्नसे जितनी संख्यापर द्वारराशि होवे उस द्वारराशिसे उतनी ही संख्यापर बाह्यराशि होती है. बाह्यराशिको भोगराशि भी कहते हैं[1] ॥ ३ ॥

---

१ जन्मकालमें जिस राशिसे प्रथमकी दशाका प्रारम्भ होता है, वह राशि ही लग्नशब्दसे यहां ग्रहण करना चाहिये, या तो जन्मलग्नही हो व सप्तम राशि हो अथवा प्रबलग्रहाश्रित राशि हो इनमेंसे जहां जिसका योग होवे वही दशा आरम्भकी राशि पाकराशिका अवधि होता है न कि केवल प्रसिद्ध लग्नही और यदि जन्मलग्नही पाकराशिका अवधि माना जावेगा तो "स एव भोगराशिश्च पर्याये प्रथमे स्मृतः।" यह वाक्य नहीं लगेगा, क्योंकि जहां सप्तमसे वा प्रबलाश्रित राशिसे दशाकी प्रवृत्ति है तहां पाकभोगराशि नहीं हो सकेंगे और वृद्धोंने पाकभोगराशि समस्त दशाओंमें कहे हैं। "चरस्थिरद्विस्वभावेष्वोजेषु प्राक् क्रमो मतः। तेष्वेव त्रिषु युग्मेषु ग्राह्यं व्युत्क्रमतोऽखिलम् ॥ एवमुल्लिखितो राशिः पाकराशिरिति स्मृतः। स एव भोगराशिश्च पर्याये प्रथमे स्मृतः ॥ लग्नाद्यावतिथः पाकः पर्याये यत्र दृश्यते।-

इसके अनन्तर द्वारबाह्यराशियोंका फल कहते हैं–

तयोः पापे बंधयोगादिः ॥ ४ ॥

यदि उन द्वारबाह्यराशियोंपर पापग्रह विद्यमान होवें तौ द्वारबाह्यराशियोंकी दशामें बन्धनादि क्लेश होता है[1] ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर उस उक्त दोषका अपवाद कहते हैं–

स्वर्क्षेऽस्य तस्मिन्नोपजीवस्य ॥ ५ ॥

उस पापग्रहयुक्त द्वारराशि अथवा बाह्यराशिमें अपने राशिपर उस पापग्रहकी बृहस्पतिके समीप स्थिति होवे तौं बन्धनादि क्लेश नहीं होता है । भाव यह है कि द्वारराशि अथवा बाह्यराशिमें स्थित हुआ पाप ग्रह अपने राशिमें बृहस्पतिके साथ संयुक्त होवे तो उक्त दोष नहीं होता है ॥ ५ ॥

भग्रहयोगोक्तं सर्वमस्मिन् ॥ ६ ॥

उस कहे हुए द्वारराशिमें अथवा बाह्यराशिमें राशि ग्रह दोनोंसे प्राप्त हुए योगोंका समस्त शुभ अशुभ फल जानने योग्य है । भाव यह है कि, राशि और ग्रह इन दोनोंसे उत्पन्न हुए जो योग हैं उनमें जो कि शुभ अशुभ फल कहा है वही फल द्वारराशि और बाह्यराशिमें जानना चाहिये ॥ ६ ॥

–तस्मात्तावतिथो भोगः पर्याये तत्र गृह्यताम् ॥ तदिदं चरपर्यायस्थिरपर्याययोर्द्वयोः । त्रिकोणाख्यदशायां च पाकभोगप्रकल्पनम् ॥ अर्थ–केंद्रदशामें यदि चर स्थिर द्विस्वभाव राशि विषमपदमें होवे तौ क्रमसे लिखे हुए राशि और चर स्थिर द्विस्वभाव राशि समपदमें होते तौ उलटे रीतिसे लिखे हुए राशिपाक और भोग नामसे होते हैं । लग्नसे जितनी संख्यापर पाकराशि होवे उतनी संख्यापर पाकराशिसे भोगराशि होता है । पाकराशि और भोगराशि चरदशा और स्थिरदशा दोनोंमें होते हैं त्रिकोण नाम दशामें भी पाक भोगकल्पना होती है ॥

१ इसमें बृद्धवाक्य भी प्रमाण हैं । " पाके भोगे च पापाढ्ये देहपीडा मनोव्यथा ॥ "

इसके अनन्तर केन्द्रदशाके आरम्भस्थानको दिखाते हैं-

पितृलाभप्राणितोऽयम् ॥ ७ ॥

लग्न और सप्तम राशिमें जो कि राशि बली होवे उस राशिको आरम्भ करके केन्द्रदशा प्रवृत्त होवे है¹ ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर केन्द्रदशाके क्रमभेदोंको कहते हैं-

प्रथमे प्राक्प्रत्यक्त्वम् ॥ ८ ॥

यदि लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् राशि चरसंज्ञक होवे तौ अनुज्झित मार्ग कर केंद्रदशाक्रम होता है। तिससे भी यदि लग्नसप्तम सम्बन्धी बलवान् चर राशि विषम पदमें हो तौ प्रथम द्वितीय तृतीयादिक्रमसे केन्द्रदशाका आरम्भ होता है ॥ ८ ॥

द्वितीये रवितः ॥ ९ ॥

यदि लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् राशि स्थिर संज्ञक होवे तो विषमसमपद भेदसे छठे २ राशिके क्रमकर केन्द्रदशाप्रवृत्ति जाननी । भाव यह है कि, लग्नसप्तमसम्बन्धी बलवान् स्थिर राशि विषम पदमें होवे तौ सीधे क्रमसे छठा फिर उससे छठा राशि इस क्रमसे केंद्रदशाप्रवृत्ति होवे है और यदि लग्नसप्तम संबन्धी बलवान् स्थिरराशि समपदमें होवे तौ उलटे मार्गसे छठे २ राशिकी केंद्रदशा होवे है ॥ ९ ॥

पृथक्क्रमेण तृतीये चतुष्टयादि ॥ १० ॥

यदि लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् राशि द्विस्वभावसंज्ञक होवे तौ विषमसमभेदसे चतुर्थादि केंद्रसे पृथक् क्रमकरके अर्थात् लग्न पंचम नवमादिसे केंद्रदशा प्रवृत्त होवे है। भाव यह है कि, लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् द्विस्वभाव राशि विषमपदमें स्थित होवे तो प्रथम तो उसकी फिर सीधे क्रमसे पंचम पणफरकी, फिर उससे पश्चात् नवम

---

१ इसमें वृद्धवचन भी प्रमाण है "बलिनः शुक्रशशिनोः केन्द्राख्यां तु दशां नयेत्। पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद्दर्पणतो नयेत् ॥" अर्थ-यदि पुरुष जातकवान् होवे तौ लग्न सप्तममें जो कि बली है उससे केंद्रदशा लावे और यदि स्त्री जातकवती होवे तो केवल सप्तमसेही केन्द्रदशा लावे ॥

आपोक्लिमकी, तदनन्तर चतुर्थ केन्द्रकी, तदनन्तर चतुर्थकेंद्रसे पंचम पणफरकी, पश्चात् नवम पणफरकी, तदनन्तर सप्तम केन्द्रकी फिर सप्तम केंद्रसे पंचम पणफरकी, फिर नवम आपोक्लिमकी, तदनन्तर दशम केन्द्रकी पश्चात् दशम केन्द्रसे पंचम पणफरकी, फिर नवम आपोक्लिमकी दशाप्रवृत्ति होवे है और यदि लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् द्विस्वभाव राशि समपदमें होवे तो प्रथम उसीकी फिर उलटी रीतिसे पंचम पणफरकी, फिर नवम आपोक्लिमकी इत्यादि रीतिसे केंद्रदशाप्रवृत्ति होवे है। इस केंद्रदशामें प्रत्येक राशिके नौ ९ ही वर्ष ग्रहण करने चाहिये[१] ॥ १० ॥

इसके अनन्तर कारककेन्द्रादिदशा कहते हैं-

स्वकेन्द्रस्थाद्याः स्वामिनो नवांशानाम् ॥ ११ ॥

आत्मकारकसे केन्द्र पणफर आपोक्लिम इन स्थानोंमें क्रमसे स्थित हुए राशि नवांशदशाओंके स्वामी होते हैं। भाव यह है कि आत्मकारकसे प्रथम केन्द्रस्थित फिर पणफरस्थित फिर आपोक्लिमस्थित जो कि राशि है वह क्रमसे नवांशदशाके वर्षोंके स्वामी होते हैं परंतु तिसमेंभी सबसे अधिक बली राशि प्रथमका फिर उससे कम बलवाला द्वितीयका फिर उससे कम बलवाला तृतीयका इस रीतिसे सर्व दुर्बल पर्यंत जानने चाहिये। जैसे केंद्रमें चार राशि स्थित होवे हैं उनमें जो अधिक बली है वह प्रथमका और उससे अल्पबलवाला द्वितियका इत्यादि रीतिसेही पणफर आपोक्लिमस्थ राशियोंका

---

१ इन तीनों सूत्रोंका फलितार्थ वृद्धोंनेभी स्पष्ट किया है। " चरेऽनुज्झितमार्गः स्यात्षष्ठषष्ठादिकाः स्थिरे। उभये कण्टका ज्ञेया लग्नपंचमभान्यतः॥ चरस्थिरद्विस्वभावेष्वोजेषु प्राक्क्रमो मतः। तेष्वेव त्रिषु युग्मेषु ग्राह्यं व्युत्क्रमतोऽखिलम्॥ " अर्थ-चरमें आरम्भसे द्वितीयादि वा द्वादशादि क्रमसे स्थिरमें आरम्भसे क्रम व्युत्क्रम भेदकर षष्ठषष्ठादि क्रमसे और द्विस्वभावमें आरम्भसे क्रमव्युत्क्रम भेदकर लग्न पंचम नवम क्रमसे चारों केन्द्रोंकी दशा जाननी। चर स्थिर द्विस्वभाव ये विषम पदमें होवें तो क्रमसे और सम पदमें होवे तो व्युत्क्रमसे गिने॥

विभाग करना चाहिये[1]। अथवा आत्मकारकसे केंद्र पणफर आपोक्लिम इन स्थानोंमें स्थित हुए ग्रह नवग्रहोंके दिये हुए वर्षोंके स्वामी होते हैं। भाव यह है कि आत्मकारकसे प्रथम केंद्रस्थित फिर पणफरास्थित फिर आपोक्लिमास्थित इन ग्रहोंकी क्रमसे दशा होवे है परन्तु उन ग्रहोंके वर्ष वही होते हैं जो कि "स तल्लाभयोरावर्त्तते" इस सूत्रद्वारा कहे हैं। केंद्रास्थित ग्रहोंमेंभी प्रथम बलीकी फिर उससे कम बलीकी इत्यादि रीतिसे दशा जाननी चाहिये[2] ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर अन्य केंद्रदशा कहते हैं-

पितृचतुष्टयवैषम्यबलाश्रयःस्थितः ॥ १२ ॥

लग्नादि चारों केंद्रोंमें जो कि सबसे अधिक बलयुक्त राशि है वह प्रथम केंद्रदशाप्रद निश्चित किया है। भाव यह है कि केंद्रास्थित राशियोंमें जो कि अधिक बली है प्रथम उस राशिकी फिर अल्पबलकेन्द्रस्थ राशिकी दशा होवे है इसी प्रकार पणफर आपोक्लिम स्थित राशियोंकी दशा होवे है। इस केन्द्रदशामें प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष दशावर्ष होते हैं ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर कारकादिदशाके वर्ष बनानेका विधान कहते हैं-

स तल्लाभयोरावर्तते ॥ १३ ॥

सो आत्मकारक लग्न और सप्तम इनके विषे वर्तता है। भाव यह है कि लग्न और सप्तमसे विषम समपदके अनुसार क्रम व्युत्क्रमसे आत्मकारकपर्यंत गिने लग्न सप्तम दोनोंके बीच जिससे आत्म-

---

१ यहां वृद्धवचन विशेष है "प्रतिभं नव वर्षाणि कारकाश्रयराशितः। जन्म संपद्विपत् क्षेम प्रत्यरिः साधको वधः ॥ मैत्रं परममैत्रं चेत्येवमंतर्दशां नयेत्। " अर्थ-जिस राशिपर आत्मकारक स्थित होवे उस राशिसे आरम्भ करके प्रत्येक राशिके नौ २ वर्ष होते हैं उन नौ वर्षोंके मध्य प्रत्येक वर्षके जन्म, संपत, विपत, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध इन नामोंसे अन्तर्दशा होवे है॥

२ यह अर्थभी सूत्रकारको संमत है क्योंकि सूत्रका यह अर्थ न किया जावेगा तो "स तल्लाभयोरावर्त्तते" यह सूत्र व्यर्थ हो जावेगा ॥

कारकपर्यन्त गिननेसे राशिसंख्या अधिक आवे वही संख्या आत्मकारकके कारककेन्द्रादिदशामें वर्ष जाने और अन्य ग्रहोंके मध्य ग्रहसे आत्मकारकपर्यन्त विषमसमपदके अनुसार क्रमव्युत्क्रम रीतिसे गिननेसे जितनी संख्या आवे वही वर्ष उस ग्रहके कारककेन्द्रादिदशामें होते हैं परन्तु जो कि ग्रह आत्मकारकके साथ युक्त होवे उसके दशावर्ष आत्मकारकके वर्षोंके बराबर होते हैं[1] ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर फल कहते हैं–

स्वामिबलफलानि च प्राग्वत् ॥ १४ ॥

दशाके स्वामी जो कि राशि और ग्रह हैं उनके बल और फल पूर्वोक्त शास्त्रवत् जानना चाहिये ॥ १४ ॥

इसके अनन्तर मंडूकदशा कहत हैं–

स्थूलादर्शवैषम्याश्रयो मण्डूकस्त्रिकूटः ॥ १५ ॥

लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो कि राशि बलवान् हो उससे आरम्भ करके मण्डूकदशा प्रवृत्त होवे है । प्रथमदशा केन्द्रस्थ राशियोंकी पश्चात् पणफरस्थ राशियोंकी फिर आपोक्लिमस्थ राशियोंकी होवे है । तिसमें भी केन्द्रस्थ पणफरस्थ आपोक्लिमस्थोंमें प्रथम दशा अधिक बलीकी फिर उससे न्यूनबलीकी इत्यादि क्रमसे दशाप्रवृत्ति होवे है और यदि पुरुष जातकवान् होवे तो लग्न सप्तममें जो अधिक बली हो उससे मंडूकदशा प्रवृत्त होवे है और यदि स्त्री

---

१ इस ग्रहदशाके बनानेमें वृद्धवाक्य प्रमाण है । " लग्नात्कारकपर्यन्तं सप्तमाद्वा दशां नयेत् । उभयोरधिका संख्या कारकस्य दशासमाः ॥ तद्युक्ता न च तत्तुल्यं प्रत्येकं स्युर्दशाः क्रमात् । ग्रहाः कारकपर्यन्तं संख्यान्यस्य दशा भवेत् ॥ कारकस्तद्युतश्चादौ तत्केन्द्रादिस्थितास्ततः । दशाक्रमेण विज्ञेया शुभाशुभफलप्रदाः ॥ " अर्थ--लग्न वा सप्तम दोनोंमेंसे विषम सम पदानुसार जिससे कारकपर्यन्त संख्या अधिक आवे वही वर्ष दशामें कारकके होते हैं । जो कि ग्रह कारकके साथ युक्त होवें उस ग्रहके वर्ष कारकके वर्षोंके बराबर होते हैं और ग्रहोंके वर्ष वेही होते हैं जो कि ग्रहसे कारकपर्यन्त गिननेसे संख्या होवे है । जहां कारक स्थित होवे उसको केन्द्र मानकर प्रथम केन्द्रस्थ बलियोंकी दशा होवे है तत्पश्चात् अल्पबलियोंकी इसी प्रकार पणफर आपोक्लिमस्थोंकी दशा जाने ॥

जातकवती होवे तो बलयुक्त सप्तम राशिसेही मण्डूकदशा प्रवृत्त होवे है[1] ॥ १९ ॥

इसके अनन्तर फल कहनेके लिये शूलदशा कहते हैं–

निर्याणलाभादिशूलदशाफले ॥ १६ ॥

मरणकारक राशिसे जो कि सप्तम राशि है उससे आरम्भ करके शुभाशुभ फल कहनेके निमित्त शूलदशा प्रवृत्त होवे है । यह शूलदशा अनेक प्रकारकी होवे है क्योंकि रुद्रशूल और रुद्राश्रय राशि और महेश्वराश्रय और मारकराशि ये सब मरणकारक स्थानही हैं। यहां शूलदशामें भी प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष ग्रहण करना चाहिये ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर जिन दशाओंमें कि कोई विशेष विधान
नहीं ऐसी समस्त साधारण दशाओंके आरम्भमें
तथा वर्ष लानेमें कुछ विशेष कहते हैं–

पुरुषे समाः सामान्यतः ॥ १७ ॥

जिन दशाओंमें कि विशेष विधान नहीं उन समस्त दशाओंमें यदि आरम्भ राशि विषम होवे तौ विषम सम पदानुसार क्रम-व्युत्क्रम रीतिसे उसी आरम्भराशिसे दशाप्रवृत्ति होवे है और सामान्यसे प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष होते हैं और यदि आरम्भ राशि सम होवे तो उस आरम्भराशिसे जो कि सप्तमराशि है उससे आरम्भ करके विषम सम पदानुसार क्रमव्युत्क्रम रीतिसे दशा-प्रवृत्ति होवे है। कोई आचार्य इस सूत्रकी यह व्याख्या करते हैं कि यदि पुरुष जातकवान् होवे तो आरम्भराशिसे दशा प्रवृत्त

---

१ इसमें वृद्धवचनभी है। "बलिनः शुक्रशशिनोर्ज्ञेया मण्डूकदा दशा । पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद्दर्पणतो नयेत ॥ "अर्थ–लग्न सप्तम इनके मध्य जो बली होवे उससे यदि पुरुष जातकवान् होवे तो मण्डूकदशा प्रवृत्त होवे है और स्त्री जातकवती होवे तो बलवान् सप्तमसेही मण्डूकदशा प्रवृत्त होवे है। मण्डूकदशामें प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष ग्रहण करने चाहिये । चर स्थिर द्विस्वभावरूप त्रिकूटघटित होनेसे अथवा केन्द्रादि त्रिबन्धुदायघटित होनेसे इस दशाका त्रिकूट नाम है ॥

होवे है और यदि स्त्री जातकवती होय तो आरम्भराशिसेही जो कि सप्तम राशि है उससे दशा प्रवृत्त होवे है[1] ॥ १७ ॥

इसके अनन्तर नक्षत्रदशा कहते हैं-

सिद्धा उडुदाये ॥ १८ ॥

विंशोत्तरी अष्टोत्तरी आदिक रूप नक्षत्रायुर्दायमें जातकान्तर-प्रसिद्ध वर्षग्रहण करने चाहिये[2] ॥ १८ ॥

---

१ इसमें भी वृद्धवचन है। "ओजे लग्नं तदेव स्याद्युग्मे तत्सप्तमं भवेत्। दशोजक्रमतो ज्ञेया युग्मे व्युत्क्रमतो मता ॥" अर्थ-विषमराशिमें लग्न होवे तौ उसीसे और सम राशिमें लग्न होवे तौ उससे सप्तम राशिसे क्रमव्युत्क्रम-रीतसे दशा होवे है ॥ इसमेंभी वृद्धवचन है। "पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद्दर्पणतो नयेत्" ॥

२ अब विंशोत्तरीदशासाधन अन्यजातकसे लिखते हैं। "कृत्तिकामवधि कृत्वा भरण्यवधि गण्यते। नवभिस्तु हरेद्भागं शेषं सूर्यादिका दशा ॥ षडादित्ये दश चन्द्रे सप्त वर्षाणि भूमिजे। अष्टादश तथा राहौ षोडशं च बृहस्पतौ॥ एकोनविंशतिर्मन्दे बुधे सप्तदशैव च। सप्तवर्षाणि केतौ च विंशतिर्भार्गवे तथा॥ विंशोत्तरीदशा ज्ञेया भोगवर्षाणि निश्चितम् ॥" अर्थ-कृत्तिकासे लेकर जन्म-नक्षत्रतक गिने संख्यामें ९ का भाग देवे एक बचे तौ सूर्य, दो बचे तौ चन्द्रमा, तीन बचे तौ मंगल, चार बचे तौ राहु, पांच बचें तौ बृहस्पति, छः बचें तौ शनैश्चर, सात बचें तौ बुध, आठ बचें तौ केतु, शून्य बचें तौ शुक्रकी प्रथम विंशोत्तरी दशा होवे है। सूर्यके ६ वर्ष, चन्द्रमाके १० वर्ष, मंगलके ७ वर्ष, राहुके १८ वर्ष, बृहस्पतिके१६वर्ष,शनैश्चरके १९ वर्ष, बुधके १७ वर्ष, केतुके ७ वर्ष, शुक्रके २० वर्ष विंशोत्तरीदशामें होवे हैं। यदि स्पष्ट परमायु १२० वर्षकी होवे तौ यह कहे हुए वर्षही सूर्यादि ग्रहोंके होते हैं और यदि स्पष्ट परमायु १२० वर्षसे कम आवे तौ त्रैराशिकरीतिसे प्रत्येक ग्रहके दशावर्षभी स्पष्ट करे। जैसे स्पष्ट परमायुको सूर्यादिकोंके कहे हुए वर्षोंसे गुणे १२० का भाग देवे जो लब्ध मिले वह सूर्यादिकोंके स्पष्ट परमायुमें स्पष्ट वर्षादि होते हैं। परमायुके स्पष्ट करनेकी रीतिभी अन्य जातकसे लिखते हैं। "जन्मर्क्षयातघटिका वेदघ्ना रामभाजिताः। लब्धमभ्रार्कतः शोध्यं शेषमायुः स्फुटं भवेत् ॥" अर्थ-जन्मनक्षत्रके स्पष्ट घटिका जितने व्यतीत हुए हों उनको ४ से गुणकर ३ का भाग देवे जो लब्ध आवे उनको १२० मेंसे घटा देवे जो शेष रहें वही स्पष्ट परमायु होवे है। अन्य अष्टोत्तरी आदिकोंका विवरण विस्तारभयसे नहीं लिखा है ॥

इसके अनन्तर योगार्द्ध दशा कहते हैं-

जगत्तस्थुषोरर्द्धं योगार्द्धं ॥ १९ ॥

प्रत्येक राशिके आये हुए चरदशावर्ष और स्थिरदशावर्षको जोड-कर आधा करे जो वर्ष आवें वही वर्ष योगार्द्धदशाके होते हैं। भाव यह है कि, चरदशामें जिस राशिके जितने वर्ष होवें और जितने वर्ष स्थिरदशामें होवें उन दोनोंको जोड लेवे फिर आधा करे. जो वर्ष होवे वेही उस राशिके योगार्द्धदशामें होते हैं ॥ १९ ॥

इसके अनन्तर योगार्द्धदशाके आरम्भराशिको कहते हैं-

स्थूलादर्शवैषम्याश्रयमेतत् ॥ २० ॥

लग्न और सप्तम दोनोंमेंसे जो कि बली होवे उसके आश्रय यह योगार्द्धदशा होवे है। भाव यह है कि, यदि लग्न सप्तमसे जो कि बली होवे उससे विषम सम पदानुसार क्रमव्युत्क्रमरीतिसे योगार्द्ध-दशा प्रवृत्त होवे है। यदि स्त्री जातकवती होवे तौ बलवान् सप्तमसेही और पुरुष जातकवान् होवे तौ लग्न सप्तम दोनोंमें बलीसे योगार्ध-दशाका आरम्भ होता है[1] ॥ २० ॥

इसके अनन्तर दृग्दशा कहते हैं-

कुजादित्रिकूटपदक्रमेण दृग्दशा ॥ २१ ॥

लग्नसे नवमादि त्रिकूटपद क्रमकरके दृग्दशा होवे है । भाव यह है कि लग्नसे जो कि, नवम राशि है प्रथम उसकी फिर वह राशि जिन राशियोंको दृष्टिचक्रमें देखता हो उनकी क्रमानुसार दशा होती है फिर लग्नसे जो कि दशम राशि है उसकी पश्चात् वह दशम राशि जिन राशियोंको दृष्टिचक्रमें देखता हो उनकी क्रमानुसार होवे है फिर लग्नसे एकादशराशिकी फिर एकादशराशि दृष्टिचक्रमें जिन राशियोंको देखता है उनकी क्रमानुसार दशा होवे है। लग्नसे नवम दशम एकादश

---

१ ऐसा वृद्धोंनेभी कहा है। "बलिनस्तु दशा नेया राहोर्हि शशिशुक्रयोः॥ स्त्री चेद्दर्पणतो नेया पुरुषश्चेत्ततो नयेत् ॥"

राशियोंकी दृग्दशा होवे है । नवम दृग्दशा, दशम दृग्दशा, एकादश दृग्दशा यह फलितार्थ है' ॥ २१ ॥

मातृधर्मयोः सामान्यं विपरीतमोजकूटयोः ॥२२॥
यथा सामान्यं युग्मे ॥ २३ ॥

पंचम एकादश इन दोनोंका क्रम विषम पदमें तौ विपरीत है और सम पदमें यथार्थ है । वृष वृश्चिक विषमपदी हैं इससे विपरीत रीतिसे पंचम एकादश ये दोनों दृष्टियोग्य हैं और सिंह कुम्भसमपदी हैं इससे विपरीत रीतिसे पंचम एकादश ये दोनों दृष्टियोग्य होते हैं । द्विस्वभावराशिमें पंचम एकादश दृष्टियोग्य है नहीं तहां यह क्रम है कि लग्नसे नवम, दशम, एकादश इन स्थानोंमें द्विस्वभाव राशि होवे तौ प्रथम उन्हींकी फिर उनसे सप्तमकी फिर यादि द्विस्वभाव राशि विषम होवे तौ क्रमसे चतुर्थ दशमकी और यदि सम होवे तौ उलटे रीतिसे चतुर्थ दशमकी दशा होवे है । भाव यह है कि, लग्नसे नवमादि स्थानोंमें चर राशि होवे तो क्रमसे पंचम नवम इन राशियोंकी दृग्दशा होवे है और लग्नसे नवमादि स्थानोंमें स्थिर राशि होवे तौ उलटे रीतिसे पंचम एकादश इन राशियोंकी दृग्दशा होवे है और तिसी प्रकार पार्श्वराशिदशाक्रम जानना और लग्नसे नवमादि स्थानोंमें द्विस्वभाव राशि होवे तौ प्रथम नवमादिककी ही दशा होवे है फिर सप्तमकी फिर यादि द्विस्वभाव विषम होवे तौ क्रमसे चतुर्थकी फिर दशमकी दशा होवे है. और यदि द्विस्वभाव सम होवे तौ उलटे क्रमसे चतुर्थकी फिर दशमकी दशा होवे

---

१ लग्नसे प्रथम नवम राशिकी दृग्दशाकी फिर दृष्टिचक्रमें नवमका जो कि सप्तम राशि है उसकी फिर नवमसे कहीं क्रमसे और कहीं व्युत्क्रमसे पञ्चम राशिकी फिर नवमसे कहीं क्रमसे कहीं व्युत्क्रमसे एकादशराशिकी दशा होवे हैं । फिर लग्नसे दशम एकादश राशियोंकी इसी प्रकार दृग्दशा जाननी शंका-नवम दशम एकादश इनसे प्रथम सम्मुख राशि कैसे कही, क्योंकि प्रमाण न होनेसे हम प्रथम पंचम राशिका ग्रहण कर सकते हैं । समाधान- "अभिपश्यंत्यृक्षाणि पार्श्वभे च" दृष्टिविषयमें प्रथम सब राशि अपने सम्मुख राशियोंको देखते हैं पश्चात पार्श्वराशियोंको देखते हैं ऐसा इन सूत्रोंका अभिप्राय होनेसे प्रथम पञ्चम राशि नहीं ग्रहण की है ॥

है। इस दृग्दशामें भी प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष ग्रहण कर्तव्य हैं[1] ॥ २२ ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर त्रिकोणदशा कहते हैं–

पितृमातृधर्मप्राण्यादिस्त्रिकोणे ॥ २४ ॥

लग्न पञ्चम नवम इन राशियोंमें जो कि बली होवे उससे त्रिकोणदशाका आरम्भ होवे है। आरम्भराशिसे लेकर क्रमसे और व्युत्क्रमसे द्वादशराशियोंकी दशा होवे है। भाव यह है कि, यदि पुरुष जातकवान् होवे तौ आरम्भराशिसे लेकर क्रमसे द्वादश राशियोंकी दशा होवे है और स्त्री जातकवती होवे तौ आरम्भराशिसे लेकर उलटे क्रमसे द्वादश राशियोंकी दशा होवे है। त्रिकोणदशाके वर्ष चरदशाके समान जानने[2] ॥ २४ ॥

---

१ यदि लग्नसे नवममें चर राशि होवे तौ प्रथम तौ उसी नवमकी फिर नवमसे जो कि अष्टम पंचम नवम राशि हैं उनकी क्रमसे दशा होवे है और यदि स्थिर राशि होवे तौ प्रथम तौ उसी नवमकी फिर नवमसे उलटे क्रमसे षष्ठ, पञ्चम, नवम, इन राशियोंकी दशा होवे है और यदि द्विस्वभाव राशि होवे तौ प्रथम तौ उसी नवमकी फिर द्विस्वभाव राशि विषम होवे तौ क्रमसे सप्तम चतुर्थ दमशकी और सम होवे तो उलटे क्रमसे सप्तम चतुर्थ दशमकी दशा होवे है। इसी प्रकार लग्नसे दशम एकादश इन स्थानोंकी दशा जाने। यह स्पष्ट भावार्थ है ॥

२ इसमें वृद्धवचन प्रमाण है। "लग्नत्रिकोणयो राशिर्बलवानुक्तहेतुभिः। तदारभ्योन्नयेच्छ्रीमच्चरपर्यायवद्दशा ॥ युग्मराशिभुवां पुंसामोजं गृह्णीत सम्मुखम्। ओजराशिभुवां स्त्रीणां युग्मं गृह्णीत सम्मुखम् ॥ ओजराशिभुवां पुंसां गृह्णीयादोजमेव तु युग्मराशिभुवां स्त्रीणां युग्ममेव समाश्रयेत्॥ क्रमोत्क्रमाभ्यां गणयेदोजयुग्मेषु राशिषु ॥" अर्थ–लग्न पंचम नवम इन राशियोंमें बली राशिसे त्रिकोणदशाका आरंभ होता है परंतु त्रिकोणदशाके वर्ष "नाथान्ताः" इस सूत्रकी कही रीतिके अनुसार जाने इससे यह दशा चरदशा समान कही है। यदि पुरुष जातकवान् होवे तौ आरम्भदशासे लेकर क्रमसे द्वादश राशियोंकी दशा होवे है और क्रमसेही प्रत्येक राशिके वर्ष राशिसे स्वामी पर्यन्त गिननेसे होते हैं और यदि स्त्री जातकवती होवे तौ उलटे क्रमसे द्वादश राशियोंकी दशा होवै है और उलटे क्रमसेही राशिसे स्वामीपर्यन्त गिननेसे वर्ष होते हैं ॥

इसके अनन्तर त्रिकोणदशाका फल कहते हैं-

तत्र बाह्याभ्यां तद्वत् ॥ २५ ॥

त्रिकोणदशामें द्वारबाह्यराशियोंकी कल्पना कर पूर्वोक्त दशाओंके समानही फल जाने[1] ॥ २५ ॥

घासगैरिकात्पत्नीकरात्कारकैः फलादेशः ॥ २६ ॥

सप्तम तृतीय प्रथम नवम इन स्थानोंसे तत्तत्कारकोंद्वारा फलादेश कर्त्तव्य है। भाव यह है कि, सप्तमसे स्त्रीविचार, तृतीयसे छोटे भ्राताका और आत्मकारकसे अपना और नवमसे पिता और धर्मका विचार कर्त्तव्य है ॥ २६ ॥

इसके अनन्तर नक्षत्रदशा कहते हैं-

तारकांशे मन्दाद्यो दशेशः ॥ २७ ॥

जन्मदिन जो कि चंद्रमाका नक्षत्र है उसके समस्त घटिका जितने होवें उनके बारह विभाग करे प्रथम भागसे लेकर बारहों विभागोंमें क्रमसे लग्नादि द्वादश राशि हैं। जिस विभागमें जन्म होवे उस विभागकी जितनी संख्या होवे उस संख्यातक लग्नसे लेकर गिने जो कि राशि आवे उससे लेकर यदि पुरुष जातकवान् होवे तो क्रमसे और स्त्री जातकवती होवे तौ उलटे क्रमसे द्वादश राशियोंकी नक्षत्रदशा होवे है। नक्षत्रदशामें भी प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष होते हैं ॥ २७ ॥

तस्मिन्नुच्चे नीचे वा श्रीमन्तः ॥ २८ ॥

नक्षत्रलग्नका स्वामी यदि उच्चमें अथवा नीचराशिमें होवे तौ उत्पन्न हुए नर लक्ष्मीवान् होते हैं। भाव यह है कि जन्मनक्षत्रके समस्त घटिकाओंके बारह खण्ड करनेसे जिस खण्डमें जन्म होवे उसकी संख्याको लग्नसे आरम्भ करके गिने जहां समाप्त होवे उस राशिको नक्षत्रलग्न कहते हैं। यदि नक्षत्रलग्नका स्वामी उच्च अथवा नीच होवे तौ मनुष्य लक्ष्मीवान् होता है ॥ २८ ॥

---

१ ऐसा वृद्धोंने भी कहा है। "तदिदं चरपर्यायस्थिरपर्याययोर्द्वयोः। त्रिकोणाख्यदशायां च पाकभोगप्रकल्पनम् ॥" इसका अर्थ सुगम है और पहले पृष्ठ १०९ में लिखभी आये हैं ॥

स्वमित्रभे किञ्चित् ॥ २९ ॥

यदि नक्षत्रलग्नका स्वामी अपने मित्रगृहमें स्थित होवे तौ कुछ थोडी लक्ष्मीवाला होता है ॥ २९ ॥

दुर्गतोऽपरथा ॥ ३० ॥

यदि नक्षत्रलग्नका स्वामी शत्रुराशिमें स्थित होवे तौ दरिद्र होता है[1] ॥ ३० ॥

स्ववैषम्ये यथा संक्रमव्युत्क्रमौ ॥ ३१ ॥

आत्मकारककी विषमता होवे तौ राशिस्वभावानुसार ही क्रम व्युत्क्रम जानने। भाव यह है कि आत्मकारक यदि विषमपद और विषम राशिमेंही स्थित होवे तो अन्तर्दशाका भोग क्रमानुसार होता है और यदि आत्मकारक विषम पदमें सम राशिमें स्थित होवे तो अन्तर्दशाका भोग उलटे क्रमसे होता है ॥ ३१ ॥

साम्ये विपरीतम् ॥ ३२ ॥

आत्मकारककी समता होवे तौ क्रमके स्थानमें व्युत्क्रम और व्युत्क्रमके स्थानमें क्रम होता है। भाव यह है कि, आत्मकारक समपदमें सम राशिपर स्थित होवे तो अन्तर्दशाका भोग क्रमानुसार होता है और आत्मकारक सम पदमें विषम राशिपर स्थित होवे तौ अन्तर्दशाका भोग उलटे क्रमसे होता है ॥ ३२ ॥

शनौ चेत्येके ॥ ३३ ॥

जिस प्रकार कि आत्मकारकमें विषम सम पदके भेदसे क्रम व्युत्क्रम और व्युत्क्रम क्रम ये होते हैं तिसी प्रकार शनैश्चरके विषे

---

१ ऐसा वृद्धोंनेभी कहा है। "जन्मान्तरे द्वादशधा विभक्ते यत्र चन्द्रमाः। लग्नात्तावत्तिथे राशौ न्यसेदाद्यदशाधिपम्॥ स यद्युच्चेऽथ वा नीचे तदा स्याद्राजसेवकः। स्वमित्रर्क्षे सुखी शत्रुराशौ निःस्वः समे समः॥" अर्थ–जन्मनक्षत्रघटिकाओंके बारह विभाग करे जिस विभागमें जन्म होवे उसकी जितनी संख्या होवे वह संख्या लग्नसे लेकर जिस राशिपर समाप्त होवें उसकी प्रथम दशा होवे है। यदि उस राशिका स्वामी उच्च वा नीच राशिमें होवे तो राजसेवक होता है और मित्रराशिपर होवेतो सुखी होताहै और यदि शत्रुराशिमें स्थित होवे तौ निर्धन होताहै और यदि सम राशिपर होवे तो सम होताहै॥

होते हैं ऐसा कोई आचार्य कहते हैं। भाव यह है कि, शनैश्चर विषम-पद और विषम राशिमें स्थित होवे तो क्रम और यदि शनैश्चर विषम-पदमें सम राशिपर स्थित होवे तौ व्युत्क्रम होता है और यदि शनैश्चर समपदमें सम राशिपर स्थित होवे तो क्रम और समपदमें विषम राशिपर स्थित होवे तो व्युत्क्रम होता है ॥ ३३ ॥

अन्तर्भुक्त्यंशयोरेतत् ॥ ३४ ॥

आत्मकारककी अन्तर्दशामें और उपदशामेंही रीति जाननी न कि अन्य जगह ॥ ३४ ॥

इसके अनन्तर दशाफलविशेष कहते हैं-

शुभा दशा शुभयुते धाम्न्युच्चे वा ॥ ३५ ॥

जो कि राशि शुभग्रहसे युक्त होवे अथवा उच्चग्रहसे युक्त होवे अथवा जिसका स्वामी उच्च राशिमें होवे तौ उस राशिकी दशा शुभ होवे है ३५

अन्यथान्यथा ॥ ३६ ॥

और जो कि राशि न शुभ ग्रहसे न मित्र ग्रहसे न उच्च ग्रहसे युक्त होवे तौ उस राशिकी दशा सम होवे है और जो कि राशि नीचादि ग्रहोंसे युक्त होवे उसकी दशा अशुभ होवे है ॥ ३६ ॥

सिद्धमन्यत् ॥ ३७ ॥

जो कि विषय इस ग्रन्थमें नहीं कहा है और अन्य शास्त्रमें प्रसिद्ध है वह अन्य शास्त्रसेही लेना चाहिये ॥ ३७ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रद्वितीयाध्याये नीलकंठीयतिलकानुसृतभाषाटीकायां श्रीपाठकमंगलसेनात्मजकाशिरामकृतायां चतुर्थपादः समाप्तः ॥ ४ ॥

श्रीमन्मङ्गलसेनसूनुप्रवरश्रीकाशिरामो ह्यभू-
द्भाषा जैमिनीसूत्रके विरचिता तेनर्तुबाणांकको ॥
संवत्त्वाश्विनमासि पर्वणि तिथौ चंद्रक्षये विद्दिने
विद्वद्भिः खलु दृश्यतां शुभदशा संशोध्यता यत्त्रुटिः ॥ १ ॥

दोहा-जिला मुरादाबादके, अन्तर्गत ढाढोलि ।
वैजोई थाना निकट, काशिराम कुलमौलि ॥ १ ॥
तिन रचि जैमिनीसूत्रपर, नीलकंठ अनुसार ।
भाषा गंगाविष्णुके, अर्पण कियो सुधार ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथ राजजनिताभ्यां योगे योगे लेयान्मेषाधिपः॥१॥ उच्चनीचस्वांशवती तादृशदृष्टिश्च शुभमातृदृष्टे यदि महाराजः॥ २ ॥ लेयलाभयोः परकाले ॥३॥ लाभलेयाभ्यां स्थानगः ॥ ४ ॥ तत्र शुक्रचन्द्रयोर्यानवन्तः ॥ ५ ॥ तत्र शनिकेतुभ्यां गजतुरगाधीशः ॥ ६ ॥ शुक्रकुजकेतुषु स्वभाग्यदारेषु स्थितेषु राजानः ॥ ७ ॥ पितृलाभधनप्राणयोश्च ॥ ८ ॥ पत्नीलाभयोः समानकालः ॥ ९ ॥ भाग्यदारयोर्ग्रहयुक्तसमानेषु सांप्रतः ॥ १० ॥ तत्र उच्चे करसंख्या राज्ञां च ॥ ११ ॥ पितृधर्मयोर्लेयलाभयोर्गुरौ चन्द्रशुभदृग्योगे मण्डलान्तः ॥१२॥ तत्र बुधगुरुदृग्योगे युवराजो वा ॥ १३ ॥ तस्मिन्नुच्चे नीचे पितृलाभयोः श्रीमन्तः ॥ १४ ॥ स्वभावनाथाभ्यां शुक्रचन्द्रदृग्योगयोः ॥ १५ ॥ तत्र शुभवर्गेषु श्रीमन्तः ॥ १६ ॥ दारशूलयोश्चन्द्रगुरौ ॥ १७ ॥ शूले चन्द्रे रिःफगुरौ धनेषु शुभेषु राजानः ॥ १८ ॥ पत्नीलाभयोश्च ॥ १९ ॥ एवमंशतो दृक्काणतश्च ॥ २० ॥ लेयलाभश्चन्द्रे गुरौ शुभदृग्योगे महान्तः॥२१॥लाभचन्द्रेऽपि ॥ २२ ॥ पापयोगाभावे शुभदृग्योगिनि च ॥ २३ ॥ अत्र शुभदृग्योगे राजप्रेष्यः ॥ २४॥ शुभवर्जेषु त्रिकोणकेन्द्रे वा ॥ २५ ॥ स्वांशयोगे राजवंशः ॥ २६ ॥ उच्चांशे तादृशदृष्टिश्च

राजाराजवंश्यो वा ॥ २७ ॥ अशुभदृग्योगान्न चेन्न चेन्न ॥२८॥ पंचमांशपदेऽपि समेषु शुभेषु राजानो वा॥२९॥ स्वलेयमेषाभ्यां राजचिह्नानि ॥ ३० ॥

इत्युपदेशसूत्रे तृतीये प्रथमः पादः ॥

यज्ञजनेशाभ्यां स्वकारकाभ्यां निधनम् ॥ १ ॥ निधनं लेयलाभयोः प्राणिनाम् ॥ २ ॥ गुरौ केन्द्रे मन्दाराभ्यां दृष्टे शनिभोगहेतौ कक्ष्यापवादः ॥ ३ ॥ रिपुरोगयोश्चन्द्रे ॥ ४ ॥ स्वभावगैश्च ॥ ५ ॥ रोगतुङ्गयोर्वा ॥ ६ ॥ तत्र शनौ प्रथमम् ॥ ७ ॥ राहोर्द्वितीयम् ॥ ८ ॥ केतोस्तृतीयं निधनम् ॥ ९ ॥ तत्तु त्रिकोणेषु ॥ १० ॥ चरे प्रथमम् ॥ ११ ॥ स्थिरे मध्यमम् ॥ १२ ॥ द्वंद्वेऽन्त्यम् ॥ १३ ॥ एवं चरस्थिरद्वंद्वे चराभ्याम्॥१४॥स्वपितृचन्द्राः ॥१५॥ तत्र शनिकक्ष्याह्रासः ॥ १६ ॥ रिपुषष्ठाष्टमयोश्च ॥ १७ ॥ प्रथममध्यमयोरंत्यमध्यमयोर्वा ॥ १८ ॥ शुभदृग्योगान्न ॥ १९ ॥ पितृलाभेशयोरस्यैव योगे वा ॥ २० ॥ अप्रसङ्गवादात्प्रामाण्यं रोगयोः प्राणिसौरदृष्टियोगाभ्याम् ॥ २१ ॥ द्वारबाह्ययोरपवादः ॥२२॥द्वारे चन्द्रदृग्योगान्न ॥ २३ ॥ केवलशुभसम्बन्धे बाह्ये च ॥२४ ॥ लेयरोगक्रूराश्रयेऽपि ॥२५॥रोगर्क्षत्रिकोणदशाब्दे ॥ २६॥ रोगनवांशदशाभ्यां निधनम् ॥२७॥ तत्रापि शनियोगे ॥२८ ॥मिश्रे शुभयोगान्न॥२९॥लग्नेन्द्वोर्भावे स्वलाभयोर्भावयोःक्रूररुद्राश्रये-

ऽपि ॥ ३० ॥ नवापवादानि ॥३१॥ इनशुक्राभ्यां रोगयोः प्रामाण्यनिधनम् ॥ ३२ ॥ महेश्वरब्रह्मयोराद्यन्तयोः ॥ ३३ ॥ चरनवांशदशायां निधनम् ॥ ३४ ॥ चित्तनाथाभ्यां रिपुरोगचित्तकर्मणि ॥३५॥ क्रूरग्रहेषु सद्योरिष्टम् ॥ ३६ ॥ शनिराहुचन्द्रयोगे सद्योऽरिष्टम् ॥३७॥ कोणाश्रयेषु सद्योऽरिष्टम् ॥ ३८ ॥ सर्वमेवं पापग्रहेषु च ॥ ३९॥ केवलरिपुरोगचित्तनाथाभ्याम् ॥४०॥ तत्रापि चित्तनाथापहारे ॥४१॥ इत्युपदेशसूत्रे तृतीये द्वितीयः पादः॥ २ ॥

लेयलाभयोः पदम् ॥ १ ॥ पदभावयोश्वरे ॥ २ ॥ क्रान्तराशौ कर्मणि दुष्टं मरणं कर्मणि पापे राजभ्यां यथा सबुधे ॥ ३ ॥ दिने दिने पुण्यम् ॥ ४ ॥ तत्र कर्मादि ॥ ५ ॥ तत्र कर्मादि ॥ ६ ॥ चराचरयोर्विपरीतकाले ॥ ७ ॥ ततः कोशे ॥ ८ ॥ पत्नीदृष्टिमात्रगुरुयुक्ते ॥ ९ ॥ पापदृग्योगे ॥ १० ॥ पाषाणमरणे ॥ ११ ॥ अत्र केतुयुक्ते ॥ १२ ॥ दोषेण हननम् ॥ १३ ॥ केतौ पापदृष्टौ वा ॥ १४ ॥अत्र शुभयोगे ॥१५॥ मलिनभावे क्रांतराशौ कर्मणि दुष्टं मरणम् ॥ १६ ॥ क्रूराश्रये सर्वशूलादि ॥ १७ ॥ राहुदृष्टौ निश्चयेन ॥ १८ ॥ राहुशनिभ्यां दुष्टबलादि ॥ १९ ॥ तत्र प्रतिबंधः ॥ २० ॥ कुजकेतुभ्यां नित्यं च ॥ २१ ॥ वाशीयोग्यफूलदें (?) ॥ २२ ॥ मृत्युरोगाभ्यां राहुचन्द्राभ्यां यथास्वं मृत्युः ॥ २३ ॥ अत्र भावकरादि ॥२४॥तुरगवृषवर्गे ॥ २५ ॥

अत्र कुजास्फोटकादिकुण्डलधरश्च ॥ २६ ॥ रत्नाकर-योगे ॥ २७ ॥ कालदण्डान्मरणम् ॥ २८ ॥ शेषा भुजं-गादि ॥ २९ ॥ कीटकवृषवृश्चिकांशे ॥ ३० ॥ रोगमातृ-दृष्टयोर्भावे मूषकादिमृतिः ॥३१॥ तत्र मन्दे॥३२॥ विष-पानादि॥३३॥सौम्यदृग्योगाभ्यां मण्डूक भेदादि ॥३४॥ स्वांशग्राह्याद्वर्णनामभिः ॥ ३५ ॥ लेयान्मृत्युः ॥ ३६॥ चले मृत्युः ॥ ३७ ॥ भाग्ये दंडात् ॥ ३८ ॥ कर्मे विषभक्षात् ॥ ३९ ॥ दारे ज्वरभयम् ॥ ४० ॥ माता शत्रुहतः ॥ ४१ ॥ शनौ रिपुभयम् ॥ ४२ ॥ लाभे कुष्ठ-रोगः ॥ ४३ ॥ विषूचीजलरोगादि देहे ॥ ४४ ॥ धने खड्गादौ ॥ ४५ ॥ नित्यदुर्मरणम् ॥४६ ॥ तत्र रवियोगे रिपुशस्त्राग्निभयम् ॥ ४७ ॥ चन्द्रेण कूपे ॥४८ ॥ कुजेन व्रणस्फोटादि ॥ ४९ ॥ बुधेन वृक्षपर्वतादयः ॥ ५० ॥ गुरुणा स्ववैषम्येऽरौ पावकः ॥५१ ॥ शुक्रेण शुक्लमेहात् ॥ ५२ ॥ शनिना विषभक्षणादि ॥ ५३ ॥ राहुकेतुभ्यां विषसर्पलोष्टबंधनादिभिः ॥ ५४ ॥ शनिराहुभ्यां राहुणा दंडादि ॥ ५५ ॥ तत्र गुरुराहुभ्यामभिचारादि ॥५६ ॥ तत्र गुरुशनिभ्यां दृष्टे यथा स्वनाशः ॥ ५७ ॥ स्वत्रिं-शांशे कौलकाफलरोगादि ॥ ५८ ॥ ललाटं प्रथमम् ॥ ५९ ॥ केशं द्वितीयः ॥६०॥ बधिरं तृतीयः ॥ ६१ ॥ चतुर्थो नेत्र ॥ ६२ ॥ सिंहादौ पंचमे ॥ ६३ ॥ षष्ठं जिह्वाग्रे ॥ ६४ ॥ पूर्वषट्के राहुकेतुभ्यां स्वजिह्वादि ॥ ६५ ॥

तत्र शनिमांदिभ्यां गलद्घादि ॥ ६६ ॥ तत्र कुजे शोषः ॥ ६७ ॥ लाभांशे मरणम् ॥ ६८ ॥ तत्र रवौ प्रतिबंधः ॥६९॥ कौन्तायुधघनौ रोगे॥७०॥सायकैर्धनम् ॥ ७१॥ अशनिहतकाये ॥ ७२ ॥ मार्गे मार्गे रिपूणां वैरिवर्गश्च स्ववैषम्ये रिपुः ॥ ७३ ॥ क्रूराश्रयबले रिपुहतः ॥७४ ॥ शन्यारफणिवर्गाद्यैः ॥ ७५ ॥ भावेशाक्रांतराशिस्थः ॥ ७६ ॥ रवियुक्तदृष्टे प्राथमिकः ॥ ७७ ॥ तत्र चंद्रान्निश्चयेनाकुजेन ज्ञातिभ्यः ॥ ७८ ॥ तत्र शनौ मृत्युवादाग्निकरणश्च ॥ ७९ ॥ स्वांशेऽपि ॥ ८० ॥ अन्यतरांशश्च ॥ ८१ ॥ नीचाश्रये विपरीतम् ॥ ८२ ॥ तत्र शनौ रूपे ॥ ८३ ॥ विषभक्षणादि ॥ ८४ ॥ तनुतनौ दंडहरम् ॥ ८५ ॥ तत्र भावविशेषः ॥ ८६ ॥ (?) अघशवनिधनम् ॥ ८७ ॥ मातापित्रोर्द्वितीयः ॥ ८८ ॥ ज्ञातिवर्गभ्रातादिस्तृतीयः ॥ ८९ ॥ कलत्रं चतुर्थम् ॥ ९० ॥ पुत्रं पंचमम् ॥ ९१ ॥ शत्रुवर्गं षष्ठम् ॥ ९२ ॥ तत्र पापानां सन्निकृष्टम् ॥ ९३ ॥जनने ॥ ९४ ॥ लाभे स्त्रिया विपत्तिः ॥ ९५ ॥ भावे स्वकर्मचित्तांशात्स्वांशे निधनम् ॥ ९६ ॥ स्वभूस्वात्पतनम् ॥ ९७ ॥ शूले मृतिः ॥ ९८॥ धनेन ज्ञानवान्मरणम् ॥ ९९ ॥ नयने ग्रहणीरोगादि ॥ १०० ॥ शूले शत्रुमरणम् ॥ १ ॥ उच्चे ग्रहभीतिः ॥ २ ॥ तत्र रविशनिभ्यामोजे कूटराशौ युग्मे निर्णयः ॥ ३ ॥ धनसुखाभ्यां पादरोगः ॥ ४ ॥ तनुविक्रमाभ्या-

मंगुलिरोगः ॥ ५ ॥ तत्र केतुना अङ्गहीनश्च ॥ ६ ॥ तत्र पापदृष्टे पादहीनः ॥ ७ ॥ अथ बलानि ॥ ८ ॥ प्राणिनि शुभयुक्ते ॥ ९ ॥ राशिबलभागे ॥११०॥ चरपर्यायेन ॥ ११ ॥ शुभदृष्टे पादहीनः १२ ॥ शुभदृष्टित्रिशूले ॥ १३ ॥ अंशत्रिशूले वा ॥ १४ ॥ भावकोणाभ्यां निसर्गतः ॥ १५ ॥ आश्रयतो बलिष्ठः ॥ १६ ॥ यादिर्भ-राशौ पितृलाभयोः ॥ १७ ॥ स्वकर्मभेदेन ॥ १८ ॥ मूर्तित्वे परिपाताभ्यां जघन्यायुषि तत्र परिपाके ॥१९॥ एवं निधनं मातापित्रोः ॥ १२० ॥ भूम्यंशश्च निवृत्ति-कारकः ॥ २१ ॥ नाथांतसंज्ञाः स्युः ॥ २२ ॥ कर्मस्था चरपर्याये ॥ २३ ॥ भाग्यदारयोः स्थिरोभयोः ॥ २४ ॥ भाग्यकारकाभ्यां मङ्गलपदम् ॥ २५ ॥ मृत्युमृत्युषि ॥ २६ ॥ अन्यैरन्यथा ॥ २७ ॥ भूतमन्यत् ॥ १२८ ॥ इत्युपदेशे आयुर्दायापवादे तृतीये तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

पुनः पदः पदे ॥ १ ॥ उपग्रहयुक्तेन श्रीमन्तः ॥ २ ॥ आधानपितुर्लेयमेषम् ॥ ३ ॥ सूर्यात् कर्मणि पित्रोः ॥ ४ ॥ पुनः पद उत्तरयोः ५ ॥ पदाभ्यां भृगुसौम्य-व्यतिरिक्ते ॥ ६ ॥ दिनकरे लाभयोरेनिसंज्ञाः स्युः (?) ॥ ७ ॥ प्रियानुपपत्तिः ॥ ८ ॥ तत्र पाकर्म ॥ ९ ॥ स्वकर्मव्याग्रश्च ॥ १० ॥ दिनकरत्रिकोणे लाभपदे गर्भ-संप्लवे ॥ ११ ॥ तत्र गर्भपाते ॥ १२ ॥ रविकेत्वंशे शुक्र-शोणितौ ॥ १३ ॥ गुरुत्रिंशांशे ॥ १४ ॥ चंद्रदृग्योगे

॥ १५ ॥ सुकलिषुवयोः ॥ १६ ॥ शुक्ररेतौ ॥ १७ ॥ वर्णपरिपाकम् ॥१८॥ यस्याधानं चन्द्रदृग्योगे ॥ १९ ॥ यथा आधानपरिपाके च चंद्रबुधभृगुयोगाभ्यामाधानप रिमिते ॥ २० ॥ सुवर्णारणिसंयोगे ॥ २१ ॥ शनिच-न्द्राभ्यां नाभेरधः ॥ २२ ॥ गर्भवायुपरिवृन्ते ॥२३॥ तत्र-केतुना पुष्करस्रजा रव्यादिकेत्वन्तम् ॥ २४ ॥ ग्रहान-तिरेतः ॥ २५ ॥ अन्ययोनिगर्भेष्वजः ॥ २६ ॥ राहुचं द्राभ्यां वीरतमः ॥ २७ ॥ अवीरोपपत्तिः कर्मणि पाके एवं गर्भनिर्णयम् ॥ २८ ॥ स्थानाद्यैः स्वांशगश्च॥२९॥ यथा धर्मशीले ॥ ३० ॥ स्वांशग्रहैर्नीचउच्चयोः॥ ३१ ॥ क्रियमेषलग्नेषु ॥ ३२ ॥ अथ रविप्राणाः ॥ ३३ ॥ नैस-र्गिकबलेष्वभियोगशूल इह जायते ॥ ३४ ॥ पुं पुमान् ॥ ३५ ॥ बाण इति ॥ ३६ ॥ अत्रोदाहारः ॥ ३७ ॥ केतुशनिभ्यां रक्तप्रदरः ॥ ३८ ॥ शनौ पातयोगे कृष्ण-वर्णः ॥ ३९ ॥ शनिशुक्राभ्यां श्यामवर्णः ॥ ४० ॥ गुरु-शशिभ्यां गौरवर्णः ॥ ४१ ॥ शनिबुधाभ्यां नीलवर्णः ॥ ४२ ॥ शनिकुजाभ्यां रक्तसुवर्णः ॥ ४३ ॥ शनिच-न्द्राभ्यां श्वेतवर्णः ॥ ४४ ॥ स्वांशवशाद्गौरनीलादीनि ॥ ४५ ॥ तथाप्युदाहरन्ति ॥ ४६ ॥ रेतः सिञ्चन्प्रजाः प्रजनयमिति विज्ञायते ॥ ४७ ॥ चरे पापदृग्योगे पुत्र-नाशः ॥ ४८ ॥ शुभदृग्योगे पुत्रलाभः ॥ ४९ ॥ पापशु-भदृग्योगाभ्यां प्रथमवर्णक्रमेण ह्रासावृत्तिः ॥ ५० ॥ यन्न-वभागे नवांशाभ्यां संख्यावृद्धिः ॥ ५१ ॥ बीजयुगबल-

योर्बिंदुपतनकाले यमलाभ्यामूर्ध्वतः शुभपापयोश्चर-स्थिरयोरर्द्धं तोतादिकनेत्रविकृतोष्ठनासिकमुखकर्णके-शदन्तपटलपादाङ्गहीनकुब्जबधिरमूलाङ्गोपाङ्गसुशिर-केशावर्तचक्रबीजविपर्यासकुनखी घृषोन्नतबृहन्नाभिनेत्रः पार्श्वंदृष्टचोरन्धकुब्जवामनसत्वस्वरनीचस्वरहीनस्वरे-त्यादिष्वपि पितृमात्रोर्बलानि ॥ ५२ ॥ एवमृक्षाणां बलानि ॥५३॥ स्वपितृभाग्ययोः परिपाककाले ॥५४॥

इति तृतीयाध्याये गर्भवर्णननिर्णयो नाम चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥ समाप्तश्चाध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

पितृदिनेशयोः प्राणिदेहः ॥१॥ लाभचन्द्रयोः प्राणि-हृदयम् ॥ २ ॥ लेयचन्द्रयोः प्राणिशिरः ॥ ३ ॥भाग्य-चन्द्रयोः प्राणिमुखम् ॥ ४ ॥ कामचन्द्रयोः प्राणिकण्ठः ॥ ५ ॥ दारचन्द्रयोः प्राणिबाहुः ॥ ६ ॥ मातृचन्द्रयोः प्राण्युदरम् ॥ ७ ॥ ततश्चन्द्रयोः प्राणिजघनम् ॥ ८ ॥ लाभचंद्रयोः प्राणिपृष्ठः ॥ ९ ॥ दिनचन्द्रयोः प्राणिगुदः ॥ १० ॥ धनचन्द्रयोः प्राणिपादौ ॥११॥ रिःफचन्द्रयोः प्राणिनेत्रे ॥ १२ ॥ शूलचन्द्रयोः कर्णयोः प्राणिकर्णौ ॥ १३ ॥ रौप्यचन्द्रयोः प्राणिनासिके ॥ १४ ॥ एवं द्वादशभावानाम् ॥ १५ ॥ प्राणिबलानि ॥ १६ ॥ अप्राण्यपि पापदृष्टः ॥ १७ ॥ प्राणिनि शुभदृष्टे ॥१८॥

तत्तद्भावे जन्म सूचितम् ॥ १९ ॥ आजन्मादिवपुःषु ॥ २० ॥ पित्रोः प्राक्काले ॥ २१ ॥ शरमेव मातापितरौ जनयतः ॥ २२ ॥ अशोणितः क्लीबश्च ॥ २३ ॥ एवं भावविचारः ॥ २४ ॥ अङ्कुशाभ्यां तु ॥ २५ ॥ वर्णभेदाश्रयेण ॥ २६ ॥ जीवेन्दुबुधादयः ॥ २७ ॥ ब्राह्मणश्च रविः कुजः क्षत्रः ॥ २८ ॥ शनिः शूद्रश्च ॥२९ ॥ राहुर्दूरजातिः ॥३०॥ केतुश्चाण्डालः ॥ ३१ ॥ वर्णभेदेन पुत्रलाभाभ्यां मृगवर्णम् ॥ ३२ ॥ आसुरत्रयं च ॥ ३३ ॥ यदि पापबाहुल्यं तत्र रमणीजालः ॥३४॥ सुखकेशानि ॥ ३५ ॥ षडानि ॥ ३६ ॥ शनिराहुकेतुकुजेषु वैपरीत्यम् ॥ ३७ ॥ तालुतफोफस्य शेवलेमित्रावरुणबले(?) ॥ ३८ ॥ मृत्युना कैवल्यम् ॥ ३९ ॥ शृङ्गारे लाटः ॥ ४० ॥ प्राणपाणौ बले ॥ ४१ ॥ मृत्युविचित्ते ॥ ४२ ॥ माधुरीकन्ये ॥ ४३ ॥ मांजिष्ठ मृगे ॥ ४४ ॥ मानुषि कुरूपः ॥४५॥ मरणे माने ॥ ४६ ॥ मायामालिङ्गे ॥ ४७ ॥ शुभेन कर्मणि पितृनियोजयोजयेत् ॥ ४८ ॥ पापे मातरि मिश्रे भ्रातरः ॥ ४९ ॥ शुभपापमिश्रे विरूपः ॥ ५० ॥ मातुनाशोकः ॥ ५१ ॥ चंद्रागुरुदृग्योगानिश्चयेनास्वस्पूर्तिपुरुषे कालरूपः ॥ ५२॥ तिर्यग्दृष्टौ प्रायो निर्वृत्तिकारकः ॥ ५३ ॥ शूलेशयोदरियोशतोघं गुरुदृष्टे च ॥ ५४ ॥

इति उपदेशे चतुर्थे प्रथमः पादः ॥ १ ॥

बलपदयोः प्राणिमारकः ॥ १ ॥ रुद्राश्रयेऽपि ॥ २ ॥ भावेऽपि बलदृष्टान्तः ॥ ३ ॥ ओजयुग्मयोः प्राणिबलम् ॥ ४ ॥ अभिपश्यति भवानि ॥ ५ ॥ शुभान्यतराणि च ॥ ६ ॥ प्रत्यक्शूले नित्यविक्रमे बुधशुक्राभ्यां दन्तोष्ठपटलपार्श्वपाः ॥ ७ ॥ करकर्णाभ्यां मृत्युचित्तयोर्विपरीतम् ॥ ८ ॥ लग्ने पित्रकभावेऽपि कामनाथयोरैक्ये यमलः ॥ ९ ॥ कामनाथप्राणिनि शुभम् ॥१०॥ स्वनाथप्राणिनि च्युतयोः ॥ ११ ॥ भावयोः प्राणिनि कक्ष्याह्रासः ॥ १२ ॥ शुभयोगबलाच्चैवम् ॥ १३ ॥ मिश्रे समाः प्राणिहीने विपरीतम् ॥१४॥ समे नित्यम् ॥ १५ ॥ भाग्ययोर्बलम् ॥ १६ ॥ गुरुचन्द्रयोर्धर्मधनैक्ये कर्मबले ॥ १७॥ मेषे विपरीतम् ॥ १८ ॥ ततः प्राणाः स्वपितृयोगः ॥ १९ ॥ शुद्धः स्वकाले ॥ २० ॥ अनुकूललेये तुङ्गे नीचे ॥ २१ ॥ भावबलाभ्यां तु ॥ २२ ॥ केन्द्रत्रिकोणोपचयेषु राहुकुजौ जानुहा वीरिकेवलराहौ तत्र निधनम् ॥ २३ ॥ भौमदृग्योगान्निश्चयेन ॥ २४ ॥ तत्र शनौ गुरुदृग्योगे सेतुयोग्यं स्वत्रिकोणराशिषु ॥ २५ ॥ पदे चापदभावे स्वामिनि इत्थम् ॥ २६ ॥ ह्रस्वफलादिशुभवर्गयुतिशेषास्त्वन्ये ॥ २७ ॥ मूर्तिरूपं च ॥ २८ ॥ स्वकारकव्यतिरिक्तेषु ॥ २९ ॥ भावबले चन्द्राश्रयेऽपि ॥ ३० ॥ दारे मित्रस्वपितृभ्याम् ॥ ३१ ॥ भावशूलदृष्ट्या च ॥३२॥ पितृनाथदृष्ट्या रोगः ॥३३॥

पुत्रनाथदृष्ट्या दरिद्रः ॥ ३४ ॥ शूलनाथदृष्ट्या व्ययशीलः ॥ ३५ ॥ रिपुनाथदृष्ट्या कर्म ॥ ३६ ॥ धननाथदृष्ट्यानिरोगी च ॥ ३७ ॥ माननाथदृष्ट्या प्रबलः ॥ ३८ ॥ दारेशदृष्ट्या सुखिनः ॥ ३९ ॥ कामेशदृष्ट्या प्रध्वंसः ॥ ४० ॥ भाग्यनाथदृष्ट्या सुरूपः ॥ ४१ ॥ सर्वदृष्ट्या प्रबलः ॥ ४२ ॥ दारभाग्ये च ॥ ४३ ॥ वर्णपदाश्रयकोणेषु ॥ ४४ ॥ शुक्रे च ॥ ४५ ॥ कोणयोः शुभेषु मित्रप्रागपवर्गे ॥ ४६ ॥ केन्द्रत्रिकोणयोः शुभे कालबलानि ॥ ४७ ॥

इत्युपदेशसूत्रे चतुर्थेऽध्याये द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

बुधशुक्रयोर्युग्मे स्त्रीजननम् ॥ १ ॥ कालनिर्णयादि ॥ २ ॥ अंशभेदेन लिप्तविलिप्ताः॥ ३॥ कालकाः॥ ४ ॥ अनुलिप्ताश्च ॥ ५ ॥ द्विना द्विचतुःसंख्यादि ॥ ६ ॥ नव भागशेषे ॥ ७ ॥ आद्यंशके ॥८॥ ग्रहक्रमेण वर्णम् ॥९॥ पुमान्पुंप्रजः ॥ १० ॥ अन्ये स्त्रियः ॥ ११ ॥ क्लीबे पूर्वापरौ ॥ १२ ॥ एवं वर्णसंज्ञाः स्युः ॥ १३ ॥ नीचे दारांशकः ॥ १४ ॥ आद्यादिस्ववणः ॥ १५ ॥ मित्रभेदाभ्यां चरपर्यायेण संज्ञाः स्युः ॥ १६ ॥ धात्वादिरूपवर्णेन ॥१७॥ स्वांशगैश्च बलः ॥१८॥ रविकुजौ रक्तौ ॥१९॥ बुधशुक्रौ श्यामौ ॥ २० ॥ कृष्णेतराः स्युः ॥ २१ ॥ त्रिभागे चरस्थिरोभयपर्याये ॥ २२॥ घटिकाषष्टिनिर्णये ॥ २३ ॥ अंशस्यैकस्य पंचघटिकाः ॥ २४ ॥ एवं द्वादश

पंच स्युः विघटिकादिक्रमेण ॥ २५ ॥ ओजे पुरुषः ॥ २६ ॥ युग्मे स्त्रियः ॥ २७ ॥ ओजयुग्मयोः स्त्रीपुरुषौ ॥ २८ यथा मातरि वर्णे ॥ २९ ॥ मात्रा प्रसवकाल-मुखेन ॥३०॥ राह्विन्दुभ्यां स्त्रीजननम् ॥३१॥ पुरुषतराः ॥ ३२ ॥ शन्याराभ्यां पुरुषः ॥ ३३ ॥ शनिबुधाभ्यां स्त्रियः ॥ ३४ ॥ शनिचन्द्राभ्यां कुजः ॥ ३५ ॥ शनिशु-क्राभ्यां रूपवत्या ॥३६॥ शनिकेत्वोर्जारिणी ॥ ३७ ॥ तत्र बुधांशे बहिर्जारिणी ॥ ३८ ॥ चंद्रशुक्रौ कामी प्रवी-णतमश्च ॥३९॥ अंशभेदेन ॥४०॥ बुधशुक्राभ्यां कामी विरागतः ॥ ४१ ॥ तत्र केत्वंशे ॥ ४२ ॥ गोपमन्यतरः ॥ ४३ ॥ केत्वंशे बुधचंद्रदृष्टे सर्ववर्णाश्रयेषु संचरितः ॥ ४४ ॥ पापदृष्टे पुंश्चली ॥ ४५ ॥ सप्तमाष्टमयोः पाप-बाहुल्ये विधवा ॥ ४६ ॥ तत्राष्टमे कुजे केतुषु ॥ ४७ ॥ दृग्योगाभ्यां भर्तृहंत्री ॥ ४८ ॥ एकांशेन ॥ ४९ ॥ ओजयुग्ममार्गया ॥ ५० ॥ नीचे विपर्ययः ॥ ५१ ॥ षड्वर्गादौ सन्निपातहनने ॥ ५२ ॥ मूर्तौ रूपम् ॥ ५३ ॥ भाग्यांशगैश्चन्द्रबाहुल्ये बुधशुक्राभ्यां सुमतिः ॥ ५४ ॥ तत्र केतुना केत्वंशे दुर्गन्धी ॥ ५५ ॥ रविदृष्टे दन्तवक्री ॥ ५६ ॥ कुजदृष्टे क्रोधकरी ॥ ५७ ॥ इतरग्रहदृग्योगः ॥ ५८ सौम्यश्च ॥ ५९ ॥ पापे पापबाहुल्या ॥ ६० ॥ शुभे गुणवती ॥ ६१ ॥ मिश्रे समाः ॥ ६२ ॥ एवम-ष्टमः सप्तमार्द्धहारितः ॥ ६३ ॥ त्रिकोणत्रिषडायेषु ॥६४॥

नीचे विपर्ययः ॥६५॥ दिनभाग्ययोरानुकूल्ये ॥६६॥ शुभेतरमिश्रतरौ च ॥ ६७ ॥ चक्षुर्वर्णभेदेन नित्याश्च ॥ ६८ ॥ यत्ने अंशकतः ॥ ६९ ॥ राज्ये नीचे ॥ ७० ॥ धने कामी ॥ ७१ ॥ धर्मे मोक्षी ॥ ७२ ॥ धने पापी ॥ ७३ ॥ तत्र रव्यंशे बालविधवा ॥ ७४ ॥ रवित्रिकोणेषु च ॥ ७५ ॥ चन्द्रे कामिनी ॥७६॥ चन्द्र-त्रिकोणेषु च कुजकुरूपिक्रोधी ॥ ७७ ॥ कुजत्रिकोणेषु च ॥ ७८ ॥ बुधे वन्ध्या ॥ ७९ ॥ बुधे त्रिकोणेषु चागुरौ पतिभक्तिपरायणी ॥८०॥ गुरुत्रिकोणेषु च ॥ ८१ ॥ शुक्रे सर्वसौभाग्यकारिणी ॥ ८२ ॥ शुक्रत्रिकोणेषु च ॥ ८३ ॥ शनौ कामिनी च पुरुषः ॥ ८४ ॥ शनित्रि-कोणेषु च ॥ ८५ ॥ राहुसर्वकर्मात्मकेषु राहुत्रिकोणेषु च ॥ ८६ ॥ केतौ चण्डाली तत्समानवर्ती ॥ ८७ ॥ तत्त्रिकोणेषु च ॥ ८८ ॥ एवं वर्णसंज्ञाः स्युः ॥ ८९ ॥ चक्षुर्हीनम् ॥ ९० ॥ वर्णात्त्रिंशांशे आद्यापहारे ॥९१॥ पापत्रिकोणेषु च ॥ ९२ ॥ यथास्वं नीचेषु च ॥ ९३ ॥ अंशग्रहबलानाम् ॥ ९४ ॥ रविशुक्राभ्यां प्रथमम् ॥ ९५ ॥ रविचन्द्राभ्यां द्वितीयम् ॥ ९६ ॥ रवि-कुजाभ्यां तृतीयम् ॥९७॥ रविबुधाभ्यां चतुर्थम् ॥९८॥ रविराहुभ्यां सप्तमम् ॥ ९९ ॥ रविकेतुभ्यामष्टमम् ॥ १०० ॥ एवं सर्वे रन्ध्रभाग्ययोर्वर्जयेत् ॥ १ ॥ लाभे च तत्र लाभयोः ॥ २ ॥ शुभे न दोषः ॥ ३ ॥ शुभ-

पापयोर्न क्वचित् ॥४॥ रन्ध्रापवादे सौम्यत्रिकोणे मृगवर्गादि ॥ ५ ॥ स्वत्रिंशांशः स्वनीचभवने ॥ ६ ॥ यथा मृगतौल्यादि ॥ ७ ॥ आद्यंशभेदेषु ॥ ८ ॥ राहुकेतुभ्यां प्रबन्धः ॥ ९ ॥ वर्गोत्तमकाले ॥ ११० ॥ प्राणी बलानि ॥ ११ ॥ नवत्रिषडाययोरंशः ॥ १२ ॥ सप्ताष्टगुणचेष्टिताः ॥ १३ ॥ शुभागेन कर्तव्यम् ॥ १४ ॥ लक्षलक्ष्यापवादयोः ॥ १५ ॥ क्रमात्क्रूरे शुभाभ्यां च व्युत्क्रमादुभयाययोः ॥ १६ ॥ रंध्रसप्तमयोरेतत् ॥१७॥ बलसचारिते ध्रुवाः ॥ १८ ॥ एतद्योगविहीनस्तु निश्चिन्त्यः स्त्रीजातके ॥ १९ ॥ इति गुरुणाभ्यां वर्णः ॥ १२० ॥ स्वपितृवर्णश्च ॥ १२१ ॥

इत्युपदेशसूत्रे चतुर्थाध्याये तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

गुणेषु गुणरमणी ॥ १ ॥ केन्द्रत्रिकोणेषु शुभवर्गेषु ॥ २ ॥ अर्कारमन्दफलयोः पुमांश्च ॥ ३ ॥ चन्द्रबुधाभ्यां स्त्री च ॥ ४ ॥ दृग्योगाभ्यामपि ॥ ५ ॥ यथा निर्हरणम् ॥ ६ ॥ रोगे पापे वधवी पापदृग्योगा निश्चयेन ॥ ७ ॥ उच्चे विलवात् ॥ ८ ॥ नीचे क्षिप्रम् ॥ ९ ॥ मिश्रे मिश्रात् ॥१०॥ चन्द्रकुजदृष्टौ निश्चयेन ॥ ११ ॥ आद्या आत्मजस्त्री ॥ १२ ॥ कार्ये पापे कोणे वा ॥ १३ ॥ पापदृग्योगकाले वियोनिसंज्ञायां विधित्वादिति ॥ १४ ॥ धात्वादिवर्णकाले ॥ १५ ॥ भावपरिवेधनेन ॥ १६ ॥ उच्चे स्वांशवर्गः ॥१७॥ अधांशे पश्चा-

दियोनिसम्बन्धः ॥ १८ ॥ मध्ये मृगाः ॥ १९ ॥ अन्त्ये कीटकादयः ॥ २० ॥ एवमुभौ शुभलोके ॥ २१ ॥ रविशुक्राभ्यां पापपूर्वम् ॥ २२ ॥ अन्यैरन्यथा ॥ २३ ॥ अत्र शुभः केतुः ॥ २४ ॥ पापदृग्योगान्न ॥ २५ ॥ रविराहुशुक्राः ॥२६॥ गुरुश्चैककालादृग्योगमिति ॥ २७ ॥ यथा चन्द्रम् ॥ २८ ॥ तत्र गुरुवर्गे स्वाम्यंशे च ॥२९॥ स्वेशभूमित्रनीचांशकश्च ॥ ३० ॥ पूर्णेन्दुराहारान्तरालाश्च ॥ ३१ ॥ शुभवर्गे शुभदृष्टियुतः ॥ ३२ ॥ अंशे मित्रभेदात् ॥ ३३ ॥ स्वानंदतुल्ये वा ॥ ३४ ॥ वर्गे नवांशश्च ॥ ३५ ॥ तत्र ज्ञानाज्ञानेषु ॥ ३६ ॥ पुत्रमणिरमणी ॥ ३७ ॥ बुधकेतुर्वा ॥३८॥ शुभचन्द्राभ्याम् ॥ ३९ ॥ स्वलग्ननाथाश्च ॥ ४० ॥

इत्युपदेशसूत्रे वियोनिभेदो नाम चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ ४ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ।

इति जैमिनीयसूत्राणि समाप्तानि ।

पुस्तकें मिलने के स्थान

१) खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
खेतवाडी, मुंबई - ४०० ००४.

२) खेमराज श्रीकृष्णदास,
६६, हडपसर इण्डस्ट्रिअल इस्टेट
पुणे - ४११ ०१३.

३) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
व बुक डिपो,
अहिल्याबाई चौक, कल्याण
(जि. ठाणे - महाराष्ट्र)

४) खेमराज श्रीकृष्णदास,
चौक - वाराणसी (उ.प्र.)

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

